7

शोध और सृजन की प्रमुख त्रैमासिकी

मामुलिया

फागों में नायिका-भेद की एक प्राचीन काव्य कृति

फाग-महोत्सव

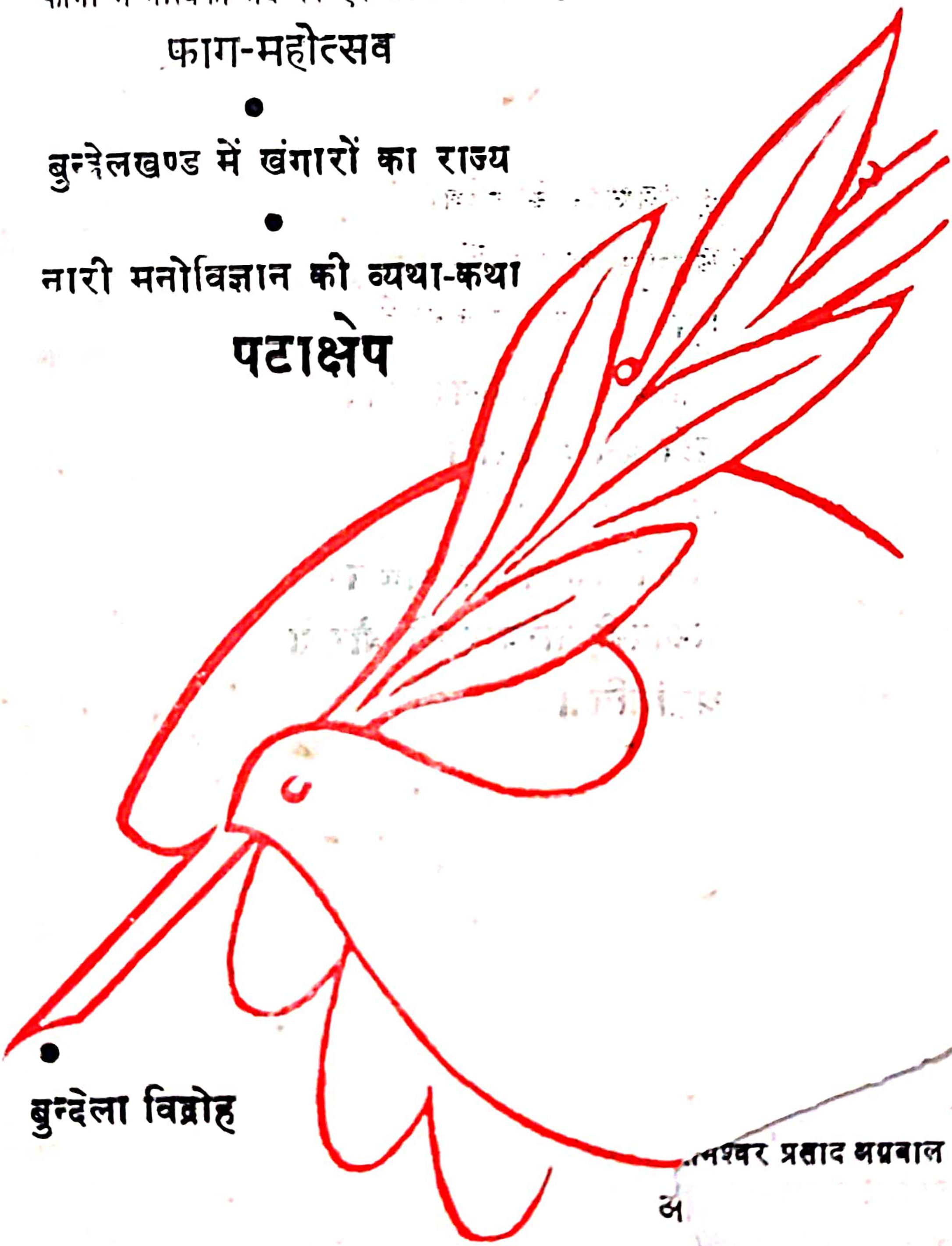
•

बुन्देलखण्ड में खंगारों का राज्य

•

नारी मनोविज्ञान की व्यथा-कथा

पटाक्षेप



•

बुन्देला विद्रोह

...मेश्वर प्रसाद अग्रवाल

अ...

बा...

बुंदेलखंड साहित्...

बुन्देलखण्ड के गांधी
चतुर्भुज पाठक, टीकमगढ़
एवं
महोबा के आंचलिक कवि
बद्री प्रसाद पचौरी
के
आकस्मिक साकेत वास पर
अकादमी परिवार की ओर से
श्रद्धांजलि ।

मध्य प्रदेश शासन द्वारा ग्राम/जनपद पंचायतों, माध्यमक/उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों, महाविद्यालयों एवं जिला/क्षेत्रीय पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत

मामुलिया

अंक ७ / सं० २०३६

कविता

कहानी/लघुकथा

लेख/संस्मरण

एक सम्पूर्ण कृति

विविध स्तम्भ

निवेदन

●

● पत्रिका में प्रकाशनार्थ प्रेषित रचनाएँ फुलस्केप साइज के कागज पर एक तरफ सुलिखित या टंकित हों। अस्वीकृत रचनाएँ लौटाने की व्यवस्था नहीं है। स्तरीय और उपयोगी रचनाओं की स्वीकृति-सूचना यथा समय स्वत. भेज दी जायेगी।

● 'पोथियों का पन्ना' स्तम्भ के लिए पुस्तक की दो प्रतियां आना आवश्यक है।

● विशिष्ट स्तम्भों के लिए रचनाएँ आमंत्रित हैं, उन्हें भेजते समय सिरे पर स्तम्भ का नाम अंकित अवश्य करें।

● पत्रिका का प्रत्येक अंक यथासमय डाक द्वारा प्रेषित किया जाता है। न मिलने पर स्थानीय डाकघर से सम्पर्क करें।

● पत्रिका का नवां अङ्क 'आल्हखण्ड' विशेषांक होगा, जो कि अपने में अप्रतिम रहेगा। सूचना मिलने पर निश्चित प्राप्ति के लिए (१) डाक-व्यय की वी० पी० पी० से भेजा जा सकेगा, (२) आगामी वर्ष की सदस्यता शुल्क की स्वीकृत मिलने पर भी वी० पी० पी० से भेजा जा सकेगा, (३) केवल इस विशेषांक की कीमत १५ रु० है। जो मंगाना चाहते हों, उनकी सूचना मिलने पर वी० पी० पी० से भेजा जा सकेगा।

□ सम्पादक : डा० नर्मदा प्रसाद गुप्त
□ सहायक सम्पादक : डा० वीरेन्द्र 'निर्झर'
□ सम्पादन सहयोग : डा० बलभद्र तिवारी, डा० छबिनाथ तिवारी, डा० कृष्णकुमार हूंका, हरिसिंह घोष, सुरेन्द्र शर्मा, आशाराम त्रिपाठी, वीरेन्द्र शर्मा 'कौशिक'

सम्पर्क □ सम्पादकीय : डा० नर्मदा प्रसाद गुप्त, शुक्लाना, छतरपुर ४७१००१,
□ व्यवस्थापकीय : बुंदेलखण्ड साहित्य अकादमी, छतरपुर ४७१००१, म० प्र०

मुद्रक :—इलाहाबाद प्रेस, ३७०, रानीमण्डी इलाहाबाद।

परख-परखाव

● **बुन्देली का मानकीकरण**

'मामुलिया' के मैंने सभी अंक देखे। 'आपकी मामुलिया' निस्संदेह बुंदेली के मानकीकरण की प्रक्रिया में योगदान दे रही है।

—डा० रामेश्वर प्रसाद अग्रवाल, क० मुं० हिन्दी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा

● **द्वैमासिकी प्रकाशन**

'मामुलिया' के माध्यम से हिन्दी, हिन्दी की बोलियां, बुंदेली और लोक संस्कृति खूब लहलहाये। अंक अच्छी तरह सम्पादित हो रहे हैं। साल में ६ निकलने लगें तो और खुशी हो। सब जुट जावें, तो यह कठिन बात नहीं है, विचार कर देखिए।

—रामेश्वर गुरु, ९ गुजराती कालोनी, चेरीताल, जबलपुर—२

● **फाग-विशेषांक : कुछ संदर्भ**

फाग-विशेषांक बहुचर्चित हुआ और होना भी चाहिए था, क्योंकि मैंने अपनी इतनी लम्बी उम्र में इतना उपयोगी अंक नहीं देखा। उसने फाग के इतिहास में एक नया अध्याय ही जोड़ दिया। मैं ज्यों-ज्यों पढ़ता जाता हूँ, कई बातें गहरे उतरती जाती हैं। इसके लिए बुंदेलखण्ड ही नहीं, वरन् सारा हिन्दी संसार 'मामुलिया' का ऋणी रहेगा। सारी प्रशंसा के बावजूद मैं यहाँ विद्वानों का ध्यान इस तरह आकर्षित करना चाहता हूँ कि वे लोकगीतों या फागों को जैसा पाते हैं, वैसा ही उद्धृत कर देते हैं, जबकि उन्हें उनकी भाषा तथा अर्थगौरव को देखना चाहिए।

इस अंक में विद्वान डा० हरगोविन्द सिंह ने पृ० ५४ पर कवि ख्याली की एक फाग इस प्रकार दी है—

अनुवां का भओ जात लगायें, बिना भेद के पायें।
किसक मिसक खांसी और खुर्रा ये नईं छिपत छिपायें।

इन पंक्तियों में 'किसक मिसक' का कोई अर्थ नहीं है। वास्तव में ये शब्द 'इश्क मुश्क' हैं, जो बुंदेली में 'इसक मुसक' होना चाहिए। इसी जोड़ की पंक्ति हिन्दी में प्रचलित है—'इश्क मुश्क खांसी खुशी, बैर और ब्योहार।'

पृष्ठ ५० पर श्री श्रीनिवास शुक्ल द्वारा कविवर गंगाधर व्यास के एक निरोष्ठ सैर की पंक्ति इस प्रकार उद्धृत की गयी है—'धर धर कें अधर मुरली झनकारें गिरधर ।' निरोष्ठ छंद में उकार तथा पवर्ग वर्जित है, अतः 'मुरली' के स्थान पर 'सरली' या 'सुरली' होना चाहिए । काशिराजकृत 'चित्र चंद्रिका' में प्रमाण है कि 'जहाँ उकार पवर्ग कों, छांड़ कीजियत छंद ।....' इसी प्रकार लता पक्ष की फाग (पृ०५२) में प्रयुक्त 'गिरिपति' का अर्थ 'शंकर' दिया गया है, जबकि उसका अर्थ 'हिमालय' होता है, वहाँ गिरधीपति है और जिसका अर्थ गिर=पर्वत, धी=पुत्री अर्थात, पार्वती, उनके पति शंकर । आशा है कि विद्वान इस पर ध्यान देंगे ।

—रामनाथ गुप्त 'हरिदेव', हटवारा, छतरपुर ।

● **यज्ञोपवीत के तीन या नौ तगा**

'मामुलिया' अब मामूली नहीं लगती–ऐसा, उसके उत्तरोत्तर वर्धिष्णु अन्तः और बाह्य उभय स्वरूप को देखकर कहते हुए खुशी होती है । पर उसके पञ्चम अङ्क में प्रकाशित—'बुन्देली लोकगीतों में निहित हिन्दू संस्कारः अर्थ-मूलक अध्ययन' को पढ़कर, एक स्थल पर लेखक की अविचारित समीक्षा से खेद हुआ । पृष्ठ २५ पर यज्ञोपवीन संस्कार के प्रसङ्ग में,

'तीन तगा को डोरा री, दमरी को सूत ए भैया ।
तीन तगा को जनवा री कैसी मजबूत सुन भैया ।
पैले में विश्नू दूजे बिरमा तीजो सूत शंकर अबधूत सुन भैया ।
पैले तगा में ओंकार है दूजे में अगना सबुत ए भैया ।
तीजे तगा में नाग-वास है चन्द बिराजे चौथे सूत ए भैया ।
पांचे सूत में पितर बिराजें प्रजापाती हैं छटवें सूत ए भैया ।
सातव तंत अस्थान पवन को सूरज को है आठों सूत ए भैया ।
नवें तंत में विश्वेदेवा हीरा कातें कन्या सूत ए भैया ।'

इस बुन्देली लोकगीत को उदाहृत करते हुए लेखक ने अपना दृष्टिकोण व्यक्त किया है कि—'इस गीत में जनेऊ के सामर्थ्य और उसमें देवताओं की संस्थिति की चर्चा है । चूंकि, यज्ञोपवीत में चौथा, पांचवां, छठवां, सातवां, आठवां एवं नौवां तागा नहीं होता, इसलिए ये पंक्तियां जनेऊ के स्वरूप-द्योतन के सन्दर्भ में अनौचित्यपूर्ण ही कही जावेंगी' ।

इस सन्दर्भ में मेरा विवेदन है कि तीन तागे-जो स्पष्ट दिखते हैं उन में से प्रत्येक के भी तीन तागे होते हैं । यज्ञोपवीत की इस निर्मिति—प्रक्रिया को उसके स्वरूपबोध के प्रसङ्ग में भुलाना नहीं चाहिए । इसको ध्यान में रखकर

ही प्राचीन ग्रन्थों में यज्ञोपवीतके नौ तन्तुओं का उल्लेख मिलता है तथा प्रत्येक तागे के साथ किसी-न-किसी देवविशेष का सम्बन्ध भी जोड़ा गया है, जिसकी स्पष्ट छाया या अनूदित जैसा भाव इस उक्त लोकगीत में देखने को मिलता है । एक दृष्टान्त यहाँ पर्याप्त होगा । कृपया, उक्त लोकगीत के सन्दर्भ में इन पंक्तियों को देखें—

'प्रथमतन्तौ ऊँकारमावाहयामि ।
द्वितीयतन्तौ अग्निमावाहयामि ।
तृतीयतन्तौ सर्पानावाहयामि ।
चतुर्थतन्तौ सोममावाहयामि ।
पञ्चमतन्तौ पितॄनावाहयामि ।
षष्ठतन्तौ प्रजापतिमावाहयामि ।
सप्तमतन्तौ अनिलमावाहयामि ।
अष्टमतन्तौ सूर्यमावाहयामि ।
नवमतन्तौ विश्वान्देवानावाहयामि ।'

(द्र०, शुक्लयजुर्वेदिनामाह्निककर्म—सूत्रावलिः' पृ० ३६५, लक्ष्मीवेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, सम्वत् २०१५) ।

इसके अतिरिक्त,

'ऊँकारश्चाग्निनागाश्च सोमपितृप्रजापतिः ।
वायुसूर्यौ विश्वेदेवा इत्येते नवतन्तवः ।।'

ऐसा पारम्परिक कथन भी संस्कारविधिवेत्ता संस्कृतज्ञों के मध्य प्रचलित है । अतः, उक्त बुन्देली लोकगीत, यज्ञोपवीत के स्वरूपबोध एवं तद्विषयक सहस्राब्दियों पुराने भारतीय सांस्कारिक मान्यताओं को अपने में सँजोए हुए है । उसमें व्यक्त विचारों को निराधार और अनौचित्यपूर्ण बताना अपनी सांस्कृतिक अनभिज्ञता को प्रकट करता है ।

पुनश्च, 'शब्द बोलते हैं' की दृष्टि से बुन्देली के प्रचुरार्थक 'बिलात' को 'बिलायत' का अर्थादेश न मानकर, यदि संस्कृत के 'बलात्'—जिसका अर्थ आधिक्य, प्राचुर्य के समीप ठहरता है, से मानें, तो क्या कोई हीनता है ?

—डा० अयोध्या प्रसाद द्विवेदी, त्रिपाठी सदन, नरसिंहगढ़ पुरवा, छतरपुर

● 'मामुलिया' का पंचम अंक बहुत अच्छा बन पड़ा है । डा०त्रिभुवननाथ शुक्ल का लेख—'बुन्देलखण्डी लोकगीतों में निहित हिन्दू संस्कार' अत्यंत रोचक लगा । पृ० २५ में छपे लोकगीत में जनेऊ के ६ तंतुओं में ६ देवों का वास दिखाया गया है, किन्तु विद्वान लेखक डा० शुक्ल ने इन पंक्तियों को

अनौचित्यपूर्ण माना है। मेरा शुक्ल से विनम्र निवेदन है कि जनेऊ में नौ तगा ही माने गये हैं और लोकगीत में कोई त्रुटि नहीं है। जनेऊ तीन धागों को बँटकर ९६ चौवा का बनाया जाता है और उसे तीन लरों में गठयाकर धारण करने को कहा गया है। इस तरह एक-एक लर में तीन सूत्र होने से ६ सूत्र या तगा हो जाते हैं। पूजनादि के समय जब जनेऊ अर्पण किया जाता है, जो निम्नलिखित मंत्र पढ़ा जाता है—

नवभिस्तन्तुभियुक्तं त्रिगुणं देवतामयम्।
उपवीतं (ब्रह्मसूत्रं) चोत्तरीयं गृहाण परमेश्वर॥

यज्ञोपवीत-संस्कार के समय जनेऊ धारण करने के पूर्व उसे नीचे लिखे मंत्र से अभिमंत्रित किया जाता है—

ऊँकारं प्रथम तन्तौ न्यसामि। ऊँ अग्नि द्वितीय तन्त्रौ न्यसामि। ऊँ नागां-स्तृतीय तन्तौ न्यसामि। ऊँ सोम चतुर्थं तन्त्रौ न्यसामि। ऊँ इन्द्र पंचम तन्तौ न्यसामि। ऊँ प्रजापति षष्ठ तन्तौ न्यसामि। ऊँ वायुं सप्तम तन्तौ न्यसामि। ऊँ सूर्य अष्टम तन्तौ न्यसामि। ऊँ विश्वेदेवान नवम तन्तौ न्यसामि। (कर्म-काण्ड भास्कर पं० केदारनाथ मिश्र 'चंचल' कृत 'उपनयन पद्धति' से)

लोकगीत में मामूली पाठान्तर जरूर दिखाई देता है, मगर वह त्रुटिपूर्ण बिल्कुल नहीं है। नित्यकर्म-प्रयोग (गीता प्रेस, गोरखपुर) के पृष्ठ ६२ पर उसके नौ तन्तुओं में क्रमशः ऊँकार, अग्नि, सर्प, सोम, पितर, प्रजापति, वायु, यम और विश्वदेव की अवस्थिति लेख की गयी है। मेरा विनम्र निवेदन है कि डा० शुक्ल जी इस पर स्वयं विचार कर लें। उनके लेख में नौ तगा नकार कर लोकगीत को त्रुटिपूर्ण कहने से भ्रांति उत्पन्न हो गई है, इसलिए इसका संशोधन होना मैं आवश्यक समझता हूँ। मुझे आशा है कि विद्वान लेखक सहमत होंगे।

—स्वामी प्रसाद मिश्र, गल्ला मंडी, छतरपुर

● कौर में कंकड़

'मामुलिया' का ताजा अंक देखा। सामग्री के सुरुचिपूर्ण चयन एवं कुशल सम्पादन के कारण 'मामुलिया' निश्चय ही आम पाठक के करीब आने में सफल रही है। किन्तु मुद्रण सम्बन्धी त्रुटियों यथा पृष्ठ २९ पर "बाप" के स्थान पर "बाहै", पृष्ठ ३५ पर "निश्वास" के स्थान पर "विश्वास", पृष्ठ ४१ पर "मास्साब" के स्थान पर "सास्साब" एवं "भ्याने" के स्थान पर 'श्याने' आदि के कारण 'रस-भंग' को कुछ वैसी ही स्थिति निर्मित हुई जैसी "कौर में कंकड़" पड़ जाने पर होती है। आशा है कि इस दिशा में भी अपेक्षित ध्यान दिया जायेगा।

—आदित्य 'ओम', १८८ जवाहर रोड, छतरपुर

● अनुकरण या चोरी

मामुलिया के अङ्क पाँच में अनवर खान गोरी का 'कला शिल्प का अप्रतिम केन्द्र भरहुत' शीर्षक लेख पृष्ठ ८५ से ९१ में प्रकाशित हुआ है। विवेच्य लेख में कुछ गम्भीर भूलें हैं। लेख में भरहुत बुन्देलखण्ड में स्थित बताया है। भरहुत बघेलखण्ड में स्थित है। यहाँ पहुँचने के लिए मध्य रेलवे के उचेहरा स्टेशन के बजाय लगरगवां स्टेशन पर उतरना चाहिए। पृ० ८६ में उल्लिखित लेख का शुद्ध पाठ इस प्रकार है—

सुगनं रजे रजो गागी-पुतस विसदेवस
पौतेण गोति-पुतस आगरजुस पूतेण
वाछि-पुतेन धनभूतिन कारितं तोरनां
सिला-कंमंतो च उपंण (॥)

लेख की भाषा में प्रवाह नहीं है। इससे भी अधिक १९६८ के मध्यप्रदेश संदेश के पृ० ४-५ पर 'भरहुत कला में लोकजीवन' शीर्षक मेरा लेख प्रकाशित हुआ था। कुछ शब्द परिवर्तनों के साथ पूरा लेख यहाँ पर उद्धृत है। शब्द परिवर्तनों के कारण उपर्युक्त त्रुटियां हो गई हैं। पृ०९० का यह पैराग्राफ देखिए—"शुंगकाल में औषधि विज्ञान में (ने) पर्याप्त उन्नति कर ली थी। ×××औषधि एकत्र करते हुए दिखाया गया है।" अर्धविराम और पूर्णविराम सहित मेरे लेख से उद्धृत कर दिया गया है।

—डा० कन्हैयालाल अग्रवाल
प्राध्यापक, वाणिज्य महाविद्यालय सतना, म० प्र०

अपने मन मानिक के लानें
सुगर जौहरी चानें

●

● जमीन से जुड़ने का नारा : लोकभाषा का सवाल

अभी कुछ दिनों पहले छतरपुर जिले के प्रगतिशील साहित्यकारों का एक सम्मेलन हुआ, जिसमें एक वक्ता ने एक साधारण-सी किन्तु बहुत गहरी बात कही कि साहित्यकारों को बुन्देली में लिखना और बोलना चाहिए ताकि किसान-मजदूर और गरीब लोग उसे समझ सकें। बात अपनी जगह पर बिल्कुल सही थी, लेकिन प्रबुद्ध वर्ग ने उसे यूं ही टाल दिया, जैसे कोई बड़ा आदमी छोटे बच्चे की बात अनसुनी कर दे। यह भी संभव है कि 'समाज-परिवर्तन और साहित्य का दायित्व' जैसी महत्वपूर्ण चर्चा में साहित्य की भाषा के सम्बन्ध में यह टिप्पणी सार्थक न समझी गयी हो। भले ही बहस के उस दौर में वक्ता अपने मुद्दे को लेकर सिलसिले से स्पष्टीकरण न दे सका हो, लेकिन इस बात को नकारा नहीं जा सकता कि जो प्रगतिशीलता साहित्यकार 'लोक' के लिए रचना करता है, उसे लोक की भाषा को अपनाना पड़ेगा। 'बुन्देली' से वक्ता का आशय लोक भाषा से था। जो साहित्यकार जिस जनपद का हो, वहाँ की लोकभाषा उस जनपद के लिए आम होती है। यदि प्रगतिशील का मतलब साहित्य को लोक से जोड़ने में है, जो निश्चित ही लोक की भाषा या लोक-भाषा का महत्त्व स्वीकार करना पड़ेगा। लोक के भावों और लोक की भाषा से अलग-थलग साहित्य प्रगतिशील कैसे कहा जा सकता है।

● जनपद की विकासमयी धारा : क्षेत्रीयता का वहम

जनपदों की संस्कृति, साहित्य और कला की विविध धाराएँ ही देश की संस्कृति, साहित्य और कला की गंगा बनाती हैं। अगर वे गतिहीन और जड़ हो जाएं, तो फिर उस गंगा का क्या होगा, यह सोचने की बात है। इसलिए हर जनपद अपनी संस्कृति, साहित्य और कला को गतिशील बनाने के लिए उनके स्वरूप को प्रकाश में लाता है, उनका विश्लेषण करता है और नयी दिशाएं खोजता है। इस तरह अपनी समस्याओं से जूझने की नयी कोशिशों में हर बार नयी ताकत बटोरता है, ताकि जनपद की सांस्कृतिक अस्मिता फिर

विकासमयी होकर उस गंगा की धारा को और गतिशील शक्ति से आगे बढ़ाने में मदद कर सके। इस प्रक्रिया में क्षेत्रीयता के वहम की कोई गुंजाइश नहीं है, वरन यों कहा जाय कि वह तो सहज रूप में निरन्तर होती ही रहती है और उसे रोका भी नहीं जा सकता, तो ज्यादा ठीक है। कुछ राजनीतिक साहित्यकार कभी-कभी क्षेत्रीयता का आरोप लगाते हैं, लेकिन वह अनुचित है। वे स्वयं ही सोचें कि अभी तक जो हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखा गया है, क्या वह अपने में पूर्ण है। जब तक देश के हर जनपद की साहित्य-सम्पदा उजागर नहीं होती, तब तक उसे सही ढंग से नहीं लिखा जा सकता और गलत निर्णय लिये जा सकते हैं। मतलब यह है कि हर जनपदीय इकाई की सम्पदा खोजे जाने से देश के भण्डार में ही बढ़ोत्तरी होती है। इसी दृष्टि से देखने पर उन विकासशील धाराओं को समझा जा सकता है, किसी चश्मे को चढ़ाकर नहीं।

● सच्चे इतिहास का सितारा : जीवनीशक्ति की समस्या

इतिहास या ऐतिहासिक चेतना जहाँ किसी समाज की जीवनीशक्ति है, वहीं संस्कृति, साहित्य और कला की भी। समाज-परिवर्तन की दिशा हो या साहित्य-परिवर्तन की, उन सभी में ऐतिहासिक चेतना की खास जिम्मेदारी रहती है। पर जिस प्रकार हमारा इतिहास राजाओं-महाराजाओं का इतिहास है, उसी प्रकार साहित्येतिहास भी महाकवियों-महालेखकों का इतिहास है। बहरहाल मुद्दे की बात यह है कि इतिहास-लेखन की दृष्टि में परिवर्तन की जरूरत है। यह तभी संभव है कि जब इतिहासकार में सोच जाग्रत हो और देश की जनपदीय इकाइयों का सही इतिहास सामने आए। बड़े दुख की बात है कि इस जनपद के ऐसे शोधपूर्ण इतिहास प्रकाशित नहीं हो पा रहे। एक तरफ स्व० प्रतिपालसिंह जू देव का लिखा बुन्देलखण्ड का इतिहास है, जो १२ खण्डों में इस जनपद के अतीत को समेटे है और दूसरी तरफ है दूसरे लेखक का बुन्देलखण्ड का साहित्यिक इतिहास जो नई खोजों और निर्णयों से भरा पड़ा है। लेकिन उनके प्रकाशन को कौन पूछता है। इस जनपद में ही ऐसी जागरूकता आ जाये, तो बात ही दूसरी है।

● लोक चेतना का सहारा : सिर्फ एक समाधान

इस सारी बहस का केवल एक निष्कर्ष है कि बुन्देली लोक को आत्म-विश्लेषण करना है और सभी परिस्थितियों की नाप-जोख करते हुए जुड़ाव की चेतना जगाना है। माटी तो उर्वरा है, इसमें कोई शक नहीं, पर चेतना-रस सिंचित करना है। बिखराव की दुरभिसंधियों के चक्रव्यूहों से निकल

कर। मान लीजिए कि आपके जनपद का एक साहित्यकार—रतिभानु तिवारी 'कंज', पृथ्वीपुर, जिला टीकमगढ़ अपनी बीमारी से जूझ रहा हैं, तो क्या आपका कोई कर्त्तव्य नहीं है ? बुन्देखण्ड के शोधकर्ता विद्वानों—स्व० प्रतिपाल सिंह, डा० हरगोविन्द सिंह, डा० गनेशीलाल बुधौलिया और न जाने कितनों के शोधपूर्ण ग्रंथ प्रकाशन की राह देख रहे हैं, क्या आपकी कोई जिम्मेदारी नहीं है ? इस जनपद के न जाने कितने कवि—जगनिक, गुमान, खुमान, मंचित, द्विज आदि; कितने गद्यकार—अक्षर अनन्य, कुमारमणि, अनन्य अलि, मीनराज प्रधान आदि स्वर्ग के झरोखों से बार-बार झांक रहे हैं कि उनके खून-पसीने से लिखी कृतियों का क्या हुआ, क्या आपका उनके प्रति कोई धर्म नहीं है ? न जाने क्या-क्या करना शेष है, उन सबके बारे में आपको ही तै करना है। इस जनपद का साहित्य, कला, संस्कृति सब उपेक्षित-से पड़े हैं; फिर आप क्यों नहीं सोचते ?

बुन्देलखण्ड साहित्य अकादमी ने हिम्मत बटोर कर पत्रिका के सात अंक प्रकाशित किए, एक मूल्यवान पुस्तक—बुन्देली फागकाव्य : एक मूल्यांकन छापी, इस वर्ष दो उपयोगी ग्रंथ और प्रकाशित हो रहे हैं, ऐसी संस्था को ही आप सम्बल देकर इस योग्य बना दें कि वह आपके स्वप्नों को पूरा कर सके।

—नर्मदा प्रसाद गुप्त

फागों में नायिका-भेद पर एक अज्ञात काव्यकृति

फाग-महोत्सव

० मूल : शिवदयालु

० सम्पादन : डा० रामेश्वर प्रसाद अग्रवाल

[बुन्देलखण्ड की लोक-रागिनी में फागें अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है। 'ईसुरी' यहां के जनप्रिय फागुकार हैं। इसी परम्परा में 'ख्याली राम', 'गंगाधर', 'रसिया' का नाम भी उल्लेखनीय है। लेखक के पास बुन्देली भाषा पर शोध-कार्य करते हुए ऐसे दस-पन्द्रह फागुकारों [1] की इनी-गिनी फागें एकत्र हो गई थीं परन्तु फागकारों के जीवन से सम्बधित ज्ञातव्य फागों के अभाव में वे अभी तक अप्रकाशित पड़ी रहीं। अच्छा है, बुन्देली साहित्य के अध्येता इनका समुचित उपयोग कर सकें, इस दृष्टि से अब इन्हें प्रकाश में लाया जा रहा है।

ईसुरी का पर्याप्त साहित्य पाठकों के बीच पहुँच चुका है, अतः उन्हें अन्य फागुकारों की कविता में बासीपन की झलक मिलेगी। चिकनियां छैलों की कलाबाजियां, यौवन मदमातो अँखियाओं की कारगुजारियां तथा पैजनियों-गुजरियों के छमाकों से उभरीं अश्लील-अभिव्यक्तियां ही इन कविताओं के मुख्य विषय हैं। यह समूचा साहित्य होली के अवसर पर फल्गु (टेसू का रंग) रंग से सराबोर श्रांगारिक चुहलबाजियों का साहित्य है। यह दूसरी बात है, सीमित क्षेत्र में दिन-प्रतिदिन के जीवन से संबधित मौलिक उद्‌भावनायें भी यत्र-तत्र मिल जायं। ईसुरी इस क्षेत्र में अप्रतिभ हैं।

बुन्देलखण्ड में ऐसे फागुकारों की एक अच्छी परम्परा रही है। यह दिखलाने के लिये हम यहां सरीला, जिला हमीरपुर के शिव दयालु की फागों का एक संकलन प्रस्तुत कर रहे है। फागुकार शिव दयालु की नायिका-भेद पर एक सामान्य कृति भी है, जिसे उन्होंने 'फागु महोत्सव' नाम दिया है। इसका जितना अंश हमारे पास सुरक्षित है, उसे यथावत् लिपिबद्ध करके प्रस्तुत किया जा रहा है। इस कृति में सुकिया (स्वकीया) और परकिया (परकीया) के भेद-

१. ईसुरी, ख्यालीराम, गंगाधर, शिवदयाल, रितेस, तांतीलाल, दुरगा, हरदयाल, मातादीन, अवधलाल, शम्भु दयाल, वली, मधुरा।

प्रभेदों के लक्षण एवं उदाहरण क्रमशः दोहों एवं फाग छंदों में दिये गये हैं। संस्कृत की मान्य नायिका-भेद-शब्दावली बुन्देली लोक कवियों द्वारा किस प्रकार उच्चरित होकर काव्य में स्थान पा सकी है, इस ओर भी पाठकों का ध्यान आकर्षित किया जा सकता है। उदाहरण के लिये, नौढ़ा (संस्कृत नवोढ़ा) प्रौढ़ा के सादृश्य पर गठित; कलहनतरता, कलह और कर्त्ता का समासयुक्त रूप (कलह का बहुवचन कलहन तथा करत, जोकि तरता बन कर आया है); उकता (ऊबने वाली स्त्री, संभवतः संस्कृत उक्ता, जिसे कह दिया गया है, बचन दे दिया गया है और अब वह प्रतीक्षारत है, अत ऊब रही है। मानक हिन्दी कोश में इस शब्द को उकताना=ऊबना, अरबी शब्द से जोड़ा गया है;) लच्छता (संस्कृत लक्षिता) जिसे देख लिया गया है, आदि। ब्रजभाषा की मान्य कृतियों में ध्वनियों के परिवर्तन की यह अनेकरूपता देखने को नहीं मिलती क्योंकि रीतियुग तक आते-आते ब्रजभाषा ने संस्कृत शब्दावली को पचाने की अपूर्व क्षमता प्राप्त कर ली थी और यह भी संभव है कि कवि-शिक्षा-ग्रन्थों के माध्यम से ब्रजभाषा का अध्ययन-अध्यापन प्रचार और प्रसार पा गया हो।

इन फागों को लोक-धुनों के उतार-चढ़ाव के साथ पढ़ा जा सकता है, अतः मात्राओं का एक सुव्यवस्थित क्रम यहां न मिल सकेगा, फिर भी १६,१२ की यति के साथ चार कड़ियों वाला छन्द फागुकारों का अपना विशेष छंद है, इसीलिये इन फागों को चौकड़याऊ फागें कहा गया है। कहीं-कहीं एक कड़ी का अंतिम शब्द दूसरी कड़ी का प्रथम शब्द बन कर आया है और इस प्रकार गेयत्व चमत्कार उत्पन्न किया गया है। छन्दयाऊ फागों में १२ मात्राओं की टेक पंक्ति लेकर ३२,३३ या ३४ मात्राओं की कड़ी खड़ी की गई है, जिसे ८ या ६ मात्राओं की अन्त्यानुप्रासिक धुन से अनुगुंजित किया गया है।

लेखक ने अर्थ स्पष्ट करने के लिये यत्र-तत्र कोमा, सामासिक चिन्ह एवं अनुस्वार के स्थान पर चन्द्रबिन्दु का प्रयोग किया है।]

सिद्धि-सदन मंगल-करन, हरण अमंगल मूल।
गिरि-तनुजा-सुत मोहि पर, सदा रहहु अनुकूल ॥ १

जय-जय श्री व्रपभानुजा, जय माधो सुख कंद।
चरणाम्बुज-मकरन्द को, मन-अलि रह सानंद ॥ २

श्री गणपति-पद वंद के, अरु सरस्वति उरधार।
फाग महोत्सव रचत हों, निज मति के अनुसार ॥ ३

प्रथम नायिका कहत हों, जा बस नायक होत।
नैन निरखि जाकी छबहि, रसकन मन उदोत ॥ ४

भेद—सोई नायिका तीन विधि, सुकिया प्रथमहि जान।
परकीया पुन दूसरी, गणका लीजी मान ॥ ५

स्वकीया लक्षण—सहज सुलक्षण सीलयुत, सुन्दर सुमति उदार।
पालत पतिवृति धर्म नित, सो सुकिया वर नार ॥ ६

उदाहरण—आई गौने प्यारी जब सें, या मन माँहि विचारी।
मानत लाज बड़े गुरुजन की, प्रिय-पद रत उरधारी ॥
हती कुरीति रीति जो गृह की, सब छिन माँहि बिडारी।
करन लगी शुभ काम धाम के, यश कीरती पसारी ॥
'शिवदयाल' आदर्श देख तुव, धन्य धन्य तोहि नारी। ७

स्वकीया भेद—एक सुकिया के कहे, भेद सुतीन विचार।
मुग्धा अरु मध्या सुनखि, पुन प्रौढ़ा वर नार ॥ ८

मुग्धा लक्षण—झलकत आवे तरणाई, भई शिशतापन दूर।
जोबन तनतन[1] हो चले, सो मुग्धा भरपूर ॥ ९

उदाहरण—आ गई बाल बदन तरणाई, बिलग भई शिशताई।
अमल अमंद चंद मंजुल मुख, हँसन अधर मधुराई ॥
चाल नवीन, पीन त्यों कुच भये, कट अति खीन लखाई।
दृग अंजन खंजन मद गंजन, कोकिल कंठ लजाई ॥
छक गई मैन करन अबलागी, पिय अस्नेह सगाई।
'शिवदयाल' कहँ कहँ लों वरणों, तिय तन सुन्दरताई ॥ १०

मुग्धा भेद—जानत नहि अज्ञात सोई, जाने जोवन ज्ञात।
मुग्धा के दो भेद यह, सब कवि वरनत जात ॥ ११

अज्ञात यौवना उदाहरण—

तिय सन निज तन बिथा सुनावै, जो है हाल बतावै।
मम अंग हरु[2] रहत हो सजनी, अब निसदिन गरुवावै ॥
जान न जाइ पीर मोहि तन की, न कोउ मोहि बतावै ॥
'शिवदयाल' अज्ञात न जानै, सोचत दिवस बितावै ॥ १२

ज्ञात यौवना उदाहरण—

नित नई प्रभा अंग अंग छाई, मन तिय खुशी मनाई।

---

१. थोड़े-थोड़े (बुन्देली में क प्रत्यय मुक्त तनक भी चलता है।)
२. हलका (गरुआ=भारी पन का विलोम)

हेरत नैन कछु तिरछे कर, भौंह कमान चढ़ाई ॥
सुनन लगी दै कान अबहीं से, जहँ रस रीति सुनाई।
'शिवदयाल' तिय के अंग सें गई, काई-सी लरकाई ॥ १३
नवोढ़ा लक्षण—अत डर लागे लाज बस, पति सैं करै न संग।
सोई नवोढ़ा जानिये, बरनत कवि रस रंग ॥ १४
उदाहरण—इक दिन खेलत खेल सयानी, सखियन संग मनमानी।
आ गये लाल इकंत जाम तहँ, दिखतई तिय मुरझानी ॥
बिसरो खेल भूल गई सुधि तब, सखी अंग लपटानी।
'शिवदयाल' गई डरावाल अति, मन में शंका मानी ॥ १५
विश्रब्ध-नवोढ़ा—जो नौढ़ा में पीव सैं, उपजे सूक्षम प्रीति।
(लक्षण) सो विश्रब्ध नौढ़ा त्रिया, बरनत कवि रस रीति ॥ १६
उदाहरण—पौढ़ी केल भवन में प्यारी, संग नहीं कोउ नारी।
धोकें पकर लओ पिय आकें, लगी नेक न वारी ॥
करो उपाव अंक भरवे को, नाहीं नही उचारी।
सोहें करै हमें न बोलो, भौहें तान निहारी ॥
'शिवदयाल' चुप साध बैठ गई, बारी[1] उम्मरवारी ॥ १७
मध्या नायिका-उठत मदन की लूक तन, बसत लाज युग नैन।
(लक्षण) पिय छबि देखत नहिं बनै, बिन देखे नहिं चैन ॥ १८
उदाहरण—बैठी केल भवन में प्यारी, आखें तहँ गिरधारी।
भर दृग दिखत बनत नहिं पिय मुख, वहु उपाय कर हारी ॥
लाज मनोज दोऊ तन राजत, सकुचत बाल बिचारी।
शिवदयाल मध्या के लक्षण, निज मति कहें उचारी ॥ १९
मानानुसार भेद-मध्या प्रौढ़ा मान जो, उपजत है मान।
धीरा और अधीर कह, धीराधीरा[2] जान ॥ २०
उदाहरण—इन कर समझहु भेद सयाने, कवियन जो न बखाने।
गुप्त कोप धीरा मन करती, प्रगट अधीरा कहने ॥
कोप प्रगट अरु गुप्त करत, सोई धीराधीरा जाने।
शिवदयाल लक्षण सब इनके, कहे जो मोहि लखाने ॥ २१
जेष्टा कनिष्टा—दोऊ व्याही तियन संग, रमें पिया निज धाम।
जेष्टा भारी प्रेम की, घटी कनिष्ठा वाम ॥ २२
उदाहरण—बैठो दोऊ सहज सुख दैनी, निज मंदिर मृग नैनी।
आये पिया बैठ गई दोऊ, ढ़िग सुखमा तन ऐनी ॥

१. छोटी, २. धीराधीर

चूम कपोल एक को लीन्हो, गूँथी एक की बैनी।
'शिवदयाल' बड़ भागिन एकभई, दूजी दुखित मलानी ॥ २३
परकीया लक्षण-और पुरुप संग मिलन कों, जाके जिय अनुराग।
परकीया तासों कहत, कवि जन जे बड़ भाग ॥ २४
भेद— यह गुण परकीया के जानों, समझो चतुर सयानो।
व्याही और पुरुप से ऊढ़ा औरई से रति ठानो।
अनऊढ़ा के यह गुण समझो, बिन व्याही रति मानो।
'शिवदयाल' भेद कहे यह, कवियन मन पहिचानो ॥ २५
परकीया के भेद षट्, कवियन किय निरधार।
गुप्ता विदग्धा, लछता, अरु कुलटा नार ॥ २६
पुनि मुदिता पहिचानिये, अरु अनुशैना जानि।
इनके चारि भेद कहु, सुनहु सुमति दै कान ॥ २७
गुप्ता लक्षण—लक्षण पर पिय मिलन के, तीय छिपावे आन।
गुप्ता तासौं कहत हैं, जे कवि सुमति सुजान ॥ २८
उदाहरण : अब भई नारि वात नई मोरी, सुनो ध्यान दै गोरी।
गई अन्हात तहाँ झुक आई, अंधियारी चहुँ ओरी।
धोके अरे ब्याल के बिरही, वैनी आन वियोरी।
सुधि नहिं रही मोहि तन मन की, भई बिबर्ण तन भोरी।
'शिवदयाल' नाहक में मोरो, घर घर घैरि करो री ॥ २९
विदग्धा लक्षण—बचपन में करि चतुरई, चतुर विदग्धा नार।
क्रिया विदग्धा नार सोई, करे क्रिया उपचार ॥ ३०
उदाहरण : पोढ़ी आनन्द भवन मँझारी, बातें करत बिचारी।
सूनी सेज पिया नहिं सँग में, निस अँधियारी कारी ॥
सास न पास ननद गई ससुरे, सूनी भवन निहारी।
टेरत बहुत सुनत कोऊ नहियाँ, मोहि लगत डर भारी ॥
है उजार कोउ रहत न मम ढ़िग, तासें रही पुकारी।
हा हा करो करो न नाहीं, दिखजाव दशा हमारी।
'शिवदयाल' आ मिलो छैल मोहिं, लगी अनंग दवारी[1] ॥३१॥
लक्षता-लक्षण : तिय पिय रस रत रीत की, सखी प्रगट कर देइ।
सोई लच्छता जानिये, यह लक्षण लख लेइ ॥३२॥
उदाहरण : प्रीति परस्पर प्यारी इनकी, दोऊ तन सुखमा भारी।
रति के दाग लगे दोऊ तन में, मैं निज दृगन निहारी।

१. दावाग्नि

वे इनके दृग में अंजन देय, ये उन मांग सम्हारी।
नोनो करें मोहि का करने, सुखी रहे नर नारी।
'शिवदयाल' दोउन के रँगरस, लखत सबै ब्रजनारी ॥३३॥

कुलटा-लक्षण : तृप्त न कबहुँ होय मन, बहु नायक में प्रीति।
कुल्टा तासों कहत हैं, लख ग्रन्थन की रीति ॥३४॥

उदाहरण : जोबन छाती कसे दिखाने, मदन बदन उमड़ाने।
कइयक यार निकार दये इन, कइ यक रहे ललचाने।
करती रति आन के संग में, तृप्त न कबहुँ माने।
'शिवदयाल' नित प्रति इनके कइएक छैल दिखाने ॥३५॥

मुदता-लक्षण : जहँ प्रिय प्यारे मिलन को, बचन सुनत है बाम।
सुख उपजै मन मौन गहि, मुदता कह कवि धाम ॥३६॥

उदाहरण : सखि सँग सपरन हेत गई ती, तहँ नई विथा भईती।
हो गई विकल अचानक, इकदम तब अनंग सरसईती।
काहू कहे आय गये मोहन, बानी सिर्वन[1] गईती।
'शिवदयाल' सुन मग्न मनहिं मन, तन सुख मौन गही ती ॥३७॥

अनुशयना-लक्षण : इक संकेत मिट गये दुखी, दूजी और न होय।
इक पति गवनागमन है, अनुशयना तिय सोय ॥३८॥

उदाहरण : सोचत मन में बैठी प्यारी, भओ दुख तन अति भारी।
कट गई ज्वार सनोवन[2] सूखो, ऊखी लई उपारी।
भई अति विकल धरत नहिं धीरज, नीर नैन ते जारी।
'शिवदयाल' भई विथा वियातन, बैठि रही मन मारी ॥३९॥

गणिका लक्षण : धन लख के तिय मिलत है, बिनु धन निकट न जाहि।
ग्रंथन की मत देख कें, गणका कहिए ताहि ।४०॥

उदाहरण : बैठी छैल मिलन के लानें, खस खाने ताखाने।
सोने-अंगन में आभूषण; सजेदिखाने।
रहती सदा गरीबन ऊपर, भौंह कमानें ताने।
शिवदयाल मिलती धन लैकै, बिन धन कई लजाने ॥४१॥

भेद : अन्य सुरत दुखता सु पुन प्रेमगर्वता लेख।
रूपगर्वता, माननी, चार सभाँति, विसेष ॥४२॥

अन्य सुरति दुखिता : पर तिय लख तन में लगे, निज पति रत दाग।
(लक्षण) अन्य सुख दुखिता कही, पूंछत अति अनुराग ॥४३॥

---

१. श्रवण=कानों तक २. सन का बन ?

उदारहण : हम सन काह करत चतुराई, दे निस हाल बताई।
लखियत तो तन ऐ सखी, रत के दाग नवीन।
नैनन अंजन दुर गये, भयें ढील कुच पीन ॥
छुट गई पियराई ओंठन से प्रगटी, मुख अरुणाई। टेक।
टोरत तन जमुहाय मुख, सोहें होत न नैन।
जान परत तामों अरी, कहूँ गँवाई रैन ॥
झूम झुकत जमुहात मोर मुख, गई तन बदल निकाई। टेक।
मोहि छिपावत कहत नहिं, आप रमी रत रंग।
कहै देत औरई प्रभा, नई नई खुसयाली अंग।
शिवदयाल रत रंग की शोभा, कैसी छिपाई ॥टेक॥ ४४

प्रेम गर्विता लक्षण : अपने पिय की प्रेम की, करै सराहना नार।
प्रेम गर्बता नायिका, कवि जन कहत विचार ।४५॥

उदाहरण : मैं अब लाजन जात मरी री, सुनो कथा यह नई री।
आये आज प्रान पियारे गृह, बेनी सीस गुही री।
अपने हाथ खवावत बीरा, बेंदी भाल दई री।
'शिवदयाल' ऐसे प्रीतम सें, कबहुँ न खीझ करी री ॥४६॥

रूप गर्विता लक्षण : निज तन छबि अवलोक कें उपमा डारत निंद।
रूपगर्वता नायिका, तासों कहत कविन्द ॥४७॥

उदाहरण : प्यारी नओ सिंगार बनाओ, तन में आज सजाओ।
सहजई मुकर विलोकत निज मुख चंद मंद कर पाओ।
अति अभिमान रूप अपने को, और न कोउ मन भाओ।
'शिवदयाल' तिय रूप देख कें पिय मन रहत लुभाओ ॥४८॥

मानवती लक्षण : लख पिय गुण अरुदोष को, जो रिसाय मन नार।
मानवती तासों कहत, जे कवि सुमति विचार ॥४९॥

उदाहरण : पिय के तुम सब लच्छन जानो, ना रिसाव यह मानो।
यही टेक सदा की उनकी, कह लों करों बखानो।
एकन के उर में भुज डारत, एकन से रत मानो।
छोड़ दई कुल कान अरी उन, करत जोईमन आनो।
'शिवदयाल' जानत तुम सब गुण, नाहक भौहें तानो ॥५०॥

अन्य दस प्रकार की नायिकायें—

जब जहँ जस समयो परै, तब तैसी त्रिय होइ।
सोई नायक दस प्रगट, जानत हैं सब कोय ॥५१॥

प्रोषितपतिका खंडता, कलहन करता होय।
विप्रलब्ध उकता बहुर, वासक सज्जा सोय ॥५२॥
स्वाधीन हूँ पतिका कही, अभिसारिका सुजान।
और प्रवस्यति प्रेयिसी, आगत पतिका आन ॥५३॥
मुग्ध, सुमध्या प्रौढ़ पुनि, परकीया गणिकाय।
ये पाँचहु दस में प्रगट, कहो मुख्य मै गाय ॥५४॥

प्रोषितपतिका : जो तिय के जी में जरन, प्राननाथ परदेस।
प्रोषित पतिका नायिका, कहत सो रसिक सुवेस ॥५५॥

उदाहरण : टेक–प्रीतम विलम विदेस रहे री, कह दृग नीर बहेरी।
छंद–दृग बहत नीर, नहिं बंधत धीर, हो हो अधीर सोचे प्यारी।
मनमथ के तीर, लगै मम शरीर, का करौं वीर, उम्मरवारी।
यह लडकैंया उमर लख, बान अनग गहेरी।
सहो जात नहि पीर मोंहि, कह दृग नीर वहे री।
टेक–बागन अरी रसालन ऊपर, कोयल शब्द कहे री।
छंद–कोयल के वैन, सुन सुन के बहिन, उठै हूक मैन, तन माहीं।
गये पिय विदेस, न दये संदेश, अब है अंदेस, मन माहीं ॥
अंत अंदेस मन में बड़ो, तजी सुरत पिय मेरी।
ता पर अब दुख देन को, कोयल शब्द कहे री।
टेक–सूनी सेज पिया बिन लख के, अंग अनंग दहे री।
छंद–रहो जरा अंग, पापी अनंग, भई बहुत तंग, बिन पिय प्यारी।
हो गई दीन, तन छवि मलीन, कहती सखीन, सो सुकुमारी।
वेग मिला दे सजन को, सखी जाँव बल तेरी
व्याकुल रहत प्रान प्यारे विन, अंग अनंग दहेरी ॥
टेक—'शिवदयाल' भई बिकल बाम अति, तन सुख बिसर गये री।
छंद—गई भूल ज्ञान, नहिं रहो ध्यान, देव दरस आन, कहती बतियाँ।
करौ कृपा कोर, हरौ पीर मोर, लेव प्रेम जोर लिखती पतियाँ।
पतियाँ लिख भेजी सखी, आवो करौ न देरी।
रहे प्रान तुम दरस हित, सब सुख बिसर गयेरी ॥ ५६

उदाहरण—प्रफुलित बन कलरव करें, सुख सरसावत मैन।
सीख रितपति आगमन की, लगे जनाई दैन ॥ ५७
टेक—सुन सखि रितपति रित आई री, आई दुख दाई री।
दु:ख सो कह भई, चैत चाँदनी रैन।
पीव विहूनी सेज लखि, अति तन जारत मैन ॥

मैन ऐन मारत सा उर में, कीन्हें निठराई री।
निठराई पिय उर धरी, छोड़ गये का जान।
प्रान पियारे कर कृपा, लेत क्यों न सुध आन ॥
टेक—आन आन कोयल बागन में, विरह बिथा गाई री।
गाई मधुवन कंजवन, सुन्दर मधुप अलाप।
धुनि सुनि कीर मयूर की, चढ़त विरह की हाय।
टेक—ताप सरीर पीर कहुँ कासन, भई तन पियराई री।
पियराई लख तन सखी, मेटत सकल सुहाग।
शिवदयाल बिन कंत के, मोहें न भावत राग ॥
टेक—राग भरी तानन की गावन, मोहि न मन भाई री। ५८

खंडिता-लक्षण--आवह पिय कहुँ अंत रम, प्रात खंडता गेह।
कहै बचन तिय कोप कर, अंग छुवन नहिं देई ॥ ५९

उदाहरण— पति सन पूँछत प्रानपियारी, रजनी कहाँ गुजारी।
नैनन पीक, ओठ अंजन है, देखहु मुकर निहारी।
मुहि न मनाव, जाव सौतन ग्रह, जाव लाल बलिहारी।
शिवदयाल नहि मिलत बाल, गये मना मना कै हारी ॥ ६०
मना मना हारे, अरे तू रूसी निज धाम।

कलह कर्त्ता—फिर पछतावै जानिये, कलहन तरता बाम ॥ ६१

उदाहरण : अब क्यों तुम पछितात पियारी, विनय न सुनी हमारी।
मना मना कै हारे प्रीतम, तुम निठराई धारी।
वैरिन कुमति बसी उर मोरे, कलह करायो भारी।
'शिवदयाल' तू वेग सखी जा, पियाहिं मना लै आरी ॥६२

विप्रलब्ध-लक्षण : यह विप्रलब्धा जानिये, लखि सूनी पिय सेज।
परै भूति मुरझाय कै, करै बिरह तन तेज ॥६३

उदाहरण : प्रिय को मिलन जात अलबेली, संग न कोई सहेली।
गई सदेह ग्रेह के भीतर, देखी सेज अकेली।
प्रिय बिन दीन मलीन भई अति, तिय तन बिरह झमेली।
'शिवदयाल' कर हाय बदन से, गिर मुरझाय नवेली ॥६४

उकता-लक्षण : पौढ़ रही सुख सदन में, अति मन रही उछाह।
पिय प्यारे आगमन की, उकला हेरत राह ॥६५

उदाहरण : पिय को हेरत राह नवेली, पैठी केल हवेली।
बीत गई युग याम निसा लख, मदन कीन्ह बगमेली।

भोर होन चाहत नहिं आये, रही सब रैन अकेली ।
'शिवदयाल' भई विकल वामजिय, हन हिय हाटक बेली ।।६६

वासक-सज्जा (लक्षण) : वासक सज्जा नायिका, भूषण सजत सिंगार ।
साजत सेज आनंद सों, प्रीतम मिलन विचार ।।६७

उदाहरण : पति सब मिलन हेतु सुकमारी, कर रही भवन तयारी ।
रच रच खूब सेवती फूलन, सुन्दर सेज सम्हारी ।
अतर सुगंध सींच घन सारन, कामोद्दीपन वारी ।
'शिवदयाल' तिय पिय मिलने को, पौढ़ी चित्तरसारी ।।६८

स्वाधीन पतिका : त्रिया रूप गुन सील लखि, नायक होइ अधीन ।
(लक्षण) स्वाधीन पतिका कहत हैं, कवि कोविद परवीन ।।६९

उदाहरण : निस दिन पिय अधीन रहत है, जैसो कहो करत हैं ।
वैसई करत रहत नित प्रात, जैसो रुख निरखत है ।
कहि विद्यमान करों में, तिनसों रस उमड़त है ।
'शिवदयाल' अबहीं से चेरे, हो गये सवई कहत है ।।७०

अभिसारिका: त्रिय बुलवावे पीव कों, को पी के गृह जाय ।
(लक्षण) ताहि कहत आभिसारिका, जे प्रवीन कविराय ।।७१

उदाहरण : मारग चलत मन्दगति प्यारी, पिय मिलाप उरधारी ।
सुन्दर बदन सदन सोभा को, काम जगावन हारी ।
लये सुकमार अंग अंगन में, भूषण वसन सम्हारी ।
नहिं मन संक निसंक जात हिय, पिय परयंक निहारी ।
'शिवदयाल' दोऊ मिले ममन मन, उर से उर भुज डारी ।।७२

प्रवत्स्यत पतिका : जाको पीव विदेस को, चाहत चलन प्रभात ।
(लक्षण) प्रवत्स्यत पतिका नायिका, ताहि कहत कवि जात ।।७३

उदाहरण : भोरहिं सुनी जवाई पिय की, दुख भयो अधिकाई ।
भूषण वसन छोड़ सब बैठी, खान पान बिसराई ।
बदन मलीन दीन अति हो गई, छाई मुख जरदाई ।
रोकत जाव न पिव परदेसे, यह रितपति रित आई ।
'शिवदयाल' सांझहि से तियने, रोवत रैन बिताई ।।७४

आगत पतिका : जाको पीव विदेस ते, घर आवत सुख होय ।
(लक्षण) आगतपतिका नायिका ताहि, कहत सब कोय ।।७५

उदाहरण : आवत पति विदेस से आरी, काहू कही पुकारी ।
सुनतई श्रवण सकल दुख बीतो, अब मन भये सुखारी ।

मिटहै विरह बिथा सब तन सें, दये मोहि दुख भारी ।
मिलवो आज प्रेम से हिलमिल, निज भुज पिअ उर डारी ।
'शिवदयाल' त्रिय के पिय आगये, दये दान अधिकारी ।।७६

—क० मुं० विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा

वह कौन था ?

• विजय तोपखाने

चंदा हुआ
समस्त बुराइयों का प्रतीक
रावण का पुतला बना
शहर के चौराहे पर जलाया गया,
अनीति पर नीति की
असत्य पर सत्य की
विजय का पर्व
बड़ी धूम से मनाया गया ।
दूसरे दिन
उसी स्थल पर
पुतले के अवशेषों पर
एक बोर्ड लगा था
जिस पर बड़े हर्फों में लिखा था
चंदे में भारी घपला
मैं खड़ा सोचता रहा
जो कल जला
वह कौन था ?

—नायब तहसीलदार
तहसील-लोढ़ी

२

बुन्देलखण्ड में खंगारों का राज्य

० मूल लेखक : स्व० दिवान प्रतिपाल सिंह जू देव

० टिप्पणीकार : डा० नर्मदा प्रसाद गुप्त

[स्व० दिवान प्रतिपाल सिंह जू देव के 'बुन्देलखंड का इतिहास' के प्रत्येक खंड से एक शोधलेख बानगी के रूप में 'मामुलिया' में प्रकाशित हो रहा है, जिसके लिए हम इतिहासकार के सुपुत्र श्री कुंवर पृथ्वीसिंह बुन्देला जू की उदारता के कृतज्ञ हैं।]

चंदेलों के शिथिल पड़ जाने के उपरान्त तथा बुन्देलों के उत्थान के पहले बुन्देलखंड के पश्चिम उत्तरी भाग पर लगभग सन् ११८२ ई० से सन् १३४० ई० तक कुंड़ार में खंगारों का शासन रहने के इशारे मिलते हैं। खंगार कदाचित पहले चंदेलों के नौकर फिर पृथ्वीराज के तथा पीछे मुसलमानों के मांडलीक होकर अधिकार पाये रहे हैं।

इसी समय काशी कन्नौज के गहरवारों ने शहाबुद्दीन तथा अन्य मुसलमान आक्रमणकारियों से पराजित होकर अपना स्थान छोड़ा था और वे कई दलों में विभक्त होकर इधर-उधर चले गये थे। उन्हीं में से एक दल ने बुन्देला नाम धारण करके इन्हीं खंगारों से शासित भूमि की सीमा से मिले जालौन जिले के मऊ महौनी स्थान में अपनी राजधानी कायम की थी। दूसरे दल ने पश्चिम ओर मारवाड़ में पहुँचकर राठौर नाम धारण करके जोधपुर बीकानेर के राज्यों की नींव जमाई थी। इन गहरवारों का प्रभाव पहले से ही बुन्देलखंड के चंदेल शासकों तथा इतर भागों के शासकों पर रहा है। और जान पड़ता है कि उसी के आधार पर बुन्देला शाखा मऊ महौनी में आ जमी थी। आगे दिये हुये उल्लेखों तथा बुन्देलों के इतिहास के सम्बन्ध की घटनाओं से बुन्देलखंड में खंगारों का पता चलता है।

परमाल[1] चन्देल ने शिया[2] पंवार को गढ़ कुंड़ार का गवर्नर नियुक्त किया था। खूबसिंह नाम का एक खंगार शिया के अधीन एक सेनानायक था। सन् ११८२ ई० में पृथ्वीराज ने परमाल के राज्य पर चढ़ाई की थी। उरई तथा बैरागढ़ में युद्ध हुये थे। परमाल पराजित हुये थे। इसी युद्ध में गढ़ कुन्ड़ार का गवर्नर शिया पंवार मारा गया था।[3]

---

१. चन्देल परमर्दिदेव (११६५-१२०३ ई०)

२. पं० गोरेलाल तिवारी ने 'शिवा' नाम दिया है।

३. बुन्देलखंड का संक्षिप्त इतिहास—पं० गोरेलाल तिवारी, पृ० ११५ देखिए।

मदनपुर के पृथ्वीराज के लेख[4] से जान पड़ता है कि कदाचित उन्होंने विशेषकर पश्चिमी बुन्देलखण्ड को अपने सीधे प्रभाव में रखने की योजना की थी। केवल पूर्वी भाग परमाल के यथार्थ शासन में रह गया था। रासा आदि से प्रकट होता है कि पृथ्वीराज ने इस विजय के उपरान्त एक खीची सरदार तथा खेते खंगार को यहाँ का गवर्नर नियुक्त किया था। यह पृथ्वीराज द्वारा नियुक्त हुआ खेते या तो वही चंदेलों का सेवक खूबसिंह था और पृथ्वीराज का अनुगामी हो गया था, या उसका कोई संबंधी था। खीची सरदार पृथ्वीराज के साथ सन् ११९१-९२ ई० में पानीपत के युद्ध में शहाबुद्दीन से लड़कर मारा गया था। खेते या खूबसिंह खंगार वहीं रहा था और उसने चंदेलों तथा चौहानों की बिगड़ी दशा का अवसर पाकर गढ़कुंड़ार पर अपना शासन दृढ़ कर लिया था। वह परमाल को छोड़कर तथा पृथ्वीराज की मातहती स्वीकार करके पहले ही दिल्ली का अनुगामी बन चुका था। अब दिल्ली पर शहाबुद्दीन का शासन हो जाने से उसको अपनी स्थिति को विशेष हानि पहुँचने की आशंका नहीं थी। प्रश्न उठने पर वह उनका अनुगामी होने तथा उनसे संरक्षण पाने का विश्वास रखता था। अवसर पड़ने पर अपनी नीति के भरोसे पूरा स्वतन्त्र अथवा अनुगामी बनने को तैयार था।

किसी इतिहास से इस बात का पता तो नहीं लगता है कि सन् ११९३ ई० के चंदावर के युद्ध में उसने जयचंद के विरुद्ध शहाबुद्दीन का साथ दिया था। परन्तु उसकी नीति, तथा कुंड़ार और चंदावर के थोड़े ही अन्तर के, तथा सन् १२०३ ई० में[5] कुतबुद्दीन द्वारा परमाल की पराजय होने पर भी उसका अधिकार कुंड़ार पर कायम रहने, और फिर पीछे भी अलाउद्दीन आदि के समयों में उसके वंशज बने रहने से, उसको चंदावर ११९३ ई० तथा कालिंजर १२०३ ई० के युद्ध में मुसलमानों के साथ में होना असंभव नहीं प्रतीत होता है। यदि खंगारों ने विशेष अवसरों पर दिल्ली का पक्षपात नहीं दिखलाया होता, तो वे उनके निरन्तर आक्रमणों से बचे भी न रहते। इस काल में क्षत्रियों का शैथिल्य भी यही बात प्रकट करता है।

पृथ्वीराज से परास्त होकर चंदेल पहले ही निर्बल हो गये थे। पीछे सन्

---

४. आर्क्योलाजिकल सर्वे रिपोर्ट्स, भाग २, पृ० ४८८। इंडियन एंटिक्वेरी, १९०८, पृ० १४५ (४०)।

५. हि० ५९९ (१२०२ ई०)—हसन निजामी कृत ताजुल-मा-असहर, इलियट, भाग २, पृ० २३१-३२१।

१२०३ ई० में कुतबुद्दीन ने कालिंजर के युद्ध में उन्हें परास्त करके उनका यथार्थ प्रभाव प्रायः नष्ट ही कर दिया था। परमाल के पुत्र त्रैलोक्य वर्मन ने सन् १२०४ ई० के लगभग ही कुछ देश पर फिर कब्जा कर लिया था तथा कालिंजर से भी मुसलमान गवर्नर को मार भगाया था। परन्तु फिर चंदेलों की सेना केन से पश्चिम और विशेष नहीं जम सकी थीं। केन से पश्चिम का मैदान खाली सा पड़ गया था।[६] उस समय खंगारों तथा अन्य लोगों को पूर्ण स्वतंत्रता उपभोग करने में कोई बाधा नहीं रही थी। खंगार पूर्ण स्वतंत्र अथवा दिल्ली के अनुगामी होकर कुड़ार में जमे रहे थे। इस प्रकार वे सन् ११८२ ई० अथवा १२०३ ई० से ही चंदेलों से स्वतंत्र सत्तावान हो गए थे। बुंदेलों के काव्य ग्रंथों के अनुसार सं० १३१३ अर्थात् सन् १२५६ ई० में माहौनी के बुंदेला राजा वीर पाल के भाई सोहनपाल ने उन्हें परास्त कर कुंड़ार पर कब्जा किया था, परन्तु अन्य घटनाओं से इसमें भेद पड़ता है। यह १३१३ का संवत् वास्तव में विक्रमी न होकर आनन्द संवत् जान पड़ता है।

देवगण के कर्नाली के प्राचीन किले की सिद्ध गुफा में एक लेख इस प्रकार है—'राजावीर ने कुंड़ार को संवत् १३४५ (सन् १२८२ ई०) में विजय किया था।' बुन्देलों के इतिहास तथा वंशावली के अनुसार सन् १२८२ ई० में वीर सिंह ने बुन्देलखण्ड में आकर विजयें की थीं तथा जगम्मनपुर के निकट सतार खां[७] को परास्त किया था। अन्य स्थानीय लेखों से यह भी जान पड़ता है कि वे इन्हीं युद्धों में मारे गये थे। निदान इस समय तक खंगारों की सत्ता के विरुद्ध कोई घटना होने का पता नहीं लगता है अर्थात सन् ११८२ ई० अथवा १२०३ से १२८८ ई० तक वे निर्वाधित शासन करते रहे थे। सन् १२८८ ई० में वीरसिंह ने उन्हें परास्त करके कुंड़ार छीन लिया था, जैसा कि कर्नाली के लेख से स्पष्ट है। परन्तु वीर सिंह ने खंगारों का आम कतल नहीं किया था, वरन् उनका उचित प्रबन्ध कर दिया था। वीरसिंह कुंड़ार पर अधिक समय तक कब्जा नहीं रख सके थे।

---

६. चंदेल और उनका राजत्व-काल—केशवचंद्र मिश्र, पृ० १३३ के अनुसार त्रैलोक्यवर्मन मध्य भारत के वर्तमान छतरपुर, बिजावर और पन्ना रियासत तथा झांसी जिले की ललितपुर तहसील वाले भूभाग पर शासन कर रहा था। आधार गौरा दान पत्र।

७. अफगान सरदार तातार खां—बुंदेलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, पृ० ११८।

पराजित होकर खंगार शांत नहीं रहे, वे शाही दरबार में शाकी[८] हुये थे। यह समय खिलजियों के शासन का था। अलाउद्दीन कड़े का गवर्नर था तथा दक्षिणी प्रांतों में विजयें कर रहा था। खंगारों की सहायता करने की भी आवश्यकता इसी समय उपस्थित हुई थी। इतिहास ग्रंथों से प्रगट होता है कि सन् १२९३-९५ ई० में दक्षिण से लौटता हुआ अलाउद्दीन मालवा तथा बुन्देलखण्ड में युद्ध करता हुआ ग्वालियर को चला गया था। इसी समय उसने तथा उसके सेनानायकों ने महोबा कीरतसिंह भर से छीना था और कुंड़ार पर चढ़ाई कर वीरसिंह से उसे छीनकर वहाँ फिर खंगारों को स्वतन्त्र बैठाया था। इसी समय में कुंड़ार अथवा अन्य किसी युद्ध में वीरसिंह मारे गये थे, बुन्देलों को दब रहना पड़ा था तथा खंगारों का शासन फिर जमा था। इस प्रकार दूसरी बार सन् १२९५ ई० में जमकर खंगारों ने सन् १३४५-४६ ई० (५० वर्ष) तक निर्वाधित शासन किया था। इस समय उन्होंने क्षत्रियों से ब्याह-सम्बन्ध जोड़ने के प्रयत्न किये थे। मुसलमानी आक्रमणों से शिथिल होकर तथा खंगारों ही के प्रभाव में होने से क्षत्रिय उनसे दबे हुये थे। किसी-किसी क्षत्रिय ने उनसे दबकर संबंध कर भी लिया था। उनके पड़ोसी बुन्देलों को यह बहुत असह्य था, परन्तु वे खंगारों से विरोध करने के योग्य नहीं थे तथा क्षत्रियों से मेल का बल भी नहीं था। इससे वे चुपचाप रहे और यह स्थिति लगभग सन् १३४६ ई० तक बनी रही। सन् १३४६ ई० में घटनावश बुन्देलों को फिर खंगारों को विजित करने की आवश्यकता आ पड़ी थी। इस समय तक बुन्देला महौनी में बैठ केवल थोड़ी सी भूमि का उपभोग करते रहे।

हुरमत सिंह या नाग खंगार के कुंड़ार शासन-काल में महौनी की गद्दी पर वीरपाल बुन्देला थे। इनके छोटे सौतेले भाई सोहनपाल और दयापाल ने थोड़ी-थोड़ी जागीर पायी थी। उससे वे राजा से खुश नहीं थे। सोहनपाल ने कुंड़ार के खंगार राजा नाग के पास जाकर अपने भाई के विरुद्ध सहायता चाही थी। नाग ने उनसे विवाह सम्बन्ध जोड़ने का प्रस्ताव किया था। इससे सोहनपाल ने उनको नाश करने का संकल्प किया था। सोहनपाल की नाराजी के और भी कारण पहले से उपस्थित थे। खंगार हिन्दू स्वामियों के विरुद्ध होकर विधर्मियों का पक्ष करते रहे थे। सन् १२८६ ई० में वीरसिंह ने खंगारों से राज्य तो छीना था और उनका समुचित प्रबंध कर दिया था, तो भी उन्होंने अपने हिन्दू शासन का विरोध कर मुसलमानों

---

८. शिकायत करने वाला (अरबी)।

को चढ़ाया था। साथ ही युद्ध होने पर सोहनपाल के पूर्वज वीरसिंह मारे
भी गये थे। ऐसी दशा में शासक जातियों का चिरस्थायी विरोध मानना
अस्वाभाविक नहीं है। निदान सोहनपाल ने अपने संबंधी पुण्यपाल पंवार,[९]
मुकट मन धंधेरे[१०] आदि की सहायता लेकर समयानुकूल नीति का मार्ग
अवलंबन करके खंगारों से कुंडार छीना था। इस समय क्रोध के आवेश
में बुन्देलों ने बहुत से खंगारों को कतल भी करा डाला था। कई मत
है कि इस काम के समय अन्य क्षत्रियों ने भी साहस करके सोहनपाल का साथ
दिया था। अब तक वे केवल योग्य नेता न होने से दबे रहे थे। सोहनपाल
को पाकर उन्होंने भी अपने अपमानों का बदला ले चित्त को शांत किया था।
यह घटना सन् १३४६ ई० के लगभग की है। इसी का जिकर बुन्देलों के
ऐतिहासिक ग्रंथों में है। यही बुन्देलों की विशेष बढ़ती की मुख्य विजय थी,
इसी से इसको स्मरण रखा और लिखा गया है। प्रायः इसका समय संवत्
१३१३ लिखा है। यह १३१३ में रासे के आधार का आनन्द संवत् है। यह
विक्रम संवत् १४०३ में पड़ता है, जो सन् १३४६ ई० के बराबर है। हमीरपुर
गजेटियर में सन् १३४० ई० के लगभग ही बुन्देला सोहनपाल द्वारा कुण्डार
का विजय होना लिखा है। बुन्देलों द्वारा इससे पहले भी एक बार संवत्
१३४५ (सन् १२८८ ई०) में कुण्डार विजय होना बुंदेलों के किसी इतिहास
में लिखा नहीं मिलता है। वे संवत् १३१३ ही लिखते हैं। परन्तु सन् १२८८
ई० की विजय का तो शिला लेख ही मौजूद है। निदान बुन्देलों ने दो बार
सन् १२८८ और १३४६ ई० में खंगारों से कुण्डार विजय किया था। अंतिम
बार की विजय में वे (खंगार) कतल हुए थे और उनका शासन लोप
हुआ था।

कुण्डार विजय कर सोहनपाल ने उसको राजधानी बनाकर अपना स्वतंत्र राज्य स्थापित किया था। इस समय कुण्डार ओरछा राज्य में है। सोहनपाल ने वीरपाल से फिर कोई छेड़छाड़ नहीं की। उनका शासन माहौनी पर बना रहा था तथा ब्योना-वाले कदाचित उसी शाख के सिलसिले में हैं। दयापाल के वंशज बीहट[११] के जागीरदार हैं।

इस समय खंगार बुन्देला-राज्यों में नकीब, मिर्द्धा, सिपाही, चौकीदार

९. सोहनपाल की कन्या धर्मकुंवरि का विवाह पवायां के परमार राजा पुण्यपाल के साथ हुआ था।

१०. दूसरी कन्या मुकुटमणि धंधेरे को ब्याही थी।

११. बुन्देलखण्ड का संक्षित इतिहास, पृ० ३१७।

आदि हैं। वे चोरी करने के लिये बदनाम भी हैं। किसी-किसी राज्यों में उनको गाँव की जागीरें भी लगीं हैं। वे इस समय शूर सिपाही तथा सच्चे स्वामि-भक्त हैं। आगे इनके सम्बन्ध के विभिन्न लेखों का संग्रह दिया जाता है। खंगार जाति के एक शिक्षित मास्टर गोविंददास ने ऐसे ही लेखों के आधार पर खंगार जाति का एक छोटा-सा इतिहास लिखा है। उसका भी सारांश आगे दिया जाता है।

ओरछा गजेटियर में लिखा है कि चंदेलों का पतन होने पर देश पर मेवाती, गौंड़, भर, योगी आदि ने १३वीं शताब्दी के अंत में अधिकार कर लिया था। भरों के पीछे-पीछे शूद्र जाति के खंगारों ने ओरछा के आस-पास अधिकार कर लिया था। दिल्ली के बादशाह अलाउद्दीन (सन् १२९६-१३१६ ई०) ने नैतिक कारणों से एक समय कुण्डार के खंगारों का संरक्षण किया था। मऊ महोनी के सोहनपाल बुन्देला (सन् १२३१-३९ ई०) के समय में गढ़ कुण्डार में खंगार राजा थे।

परमाल चंदेल ने सन् ११८२ ई० से पहिले गढ़ कुण्डार एक सेनानामक शिया पंवार को दिया था। उरई के युद्ध में वह मारा गया था, फिर चंदेल राज्य निर्बल हो गया था। तब पूर्वी और दक्षिणी भागों पर गौंड़ों ने और टहरौली तहसील (ओरछा राज्य में) पर खंगारों ने कब्जा कर लिया था। खंगारों का मुखिया खूबसिंह था। वह शिया की मातहती में एक अफसर था और पीछे स्वतन्त्र अधिकारी बन गया था।

सोहनपाल के समय में कुण्डार में खूबसिंह के वंशज थे। प्रबल होकर उन्होंने राजपूतों से सम्बन्ध करने का प्रयत्न किया था। मुसलमानी हमलों से राजपूत विवश तथा निर्बल हो रहे थे। निदान सोहनपाल का संकल्प सुनते ही सहारा पाकर क्षत्रिय उनके साथ हो गए थे। सोहनपाल ने अपनी सेना संगठित करके तथा बेतवा पर पड़ाव डालकर कुण्डार के राजा हुरमत सिंह खंगार के पास दूत भेज कर भाई के विरुद्ध माहौनी लेने में सहायता माँगी थी। खंगार राजा ने ब्याह-सम्बन्ध करने की शर्त पर सहायता देने का वचन दिया था। इससे सोहनपाल बिगड़ उठे थे और उन्होंने आस-पास के राजपूतों से खंगारों से युद्ध करने में सहायता माँगी थी। सब राजपूतों ने भय के कारण इन्कार कर दिया था। केवल पंवार और धंधेरे क्षत्रिय सोहनपाल के सहायक हुए थे। तब सोहनपाल ने बिक्रम संवत १३१३ या १३१४ सन् १२५७ ई० में हमला करके खंगारों को परास्त किया और उनके राज्य पर अधिकार कर लिया था। ऐसे जातीय कार्य में सहायक न होने से बुंदेलों तथा अन्य क्षत्रियों में मनमुटाव हो गया

था। अस्तु इसी समय से अन्य राजपूतों से सम्बन्ध-प्रथा शिथिल-सी होकर प्रायः बुन्देला, पंवार और धंधेरों में ही ब्याह-सम्बन्ध होने लगे थे। हालांकि ओरछा तथा पन्ना के राजाओं ने इस विरोध को विशेष चलने नहीं दिया और बैस, चौहान, बघेल, परिहार आदि से बराबर ब्याह-संबंध किये हैं, परतु साधारण स्थिति के बुन्देला, पंवार और धंधेरे अपने परस्पर निर्वाह के विचार से पहले समझौते के अनुसार ही संबंध करते जाते हैं।

कुं० कन्हैया जू लिखते हैं कि संवत् ११४० (आनन्द) में चंदेल राजा परमाल से पृथ्वी चौहान ने यह देश विजय करके एक खींची सरदार और खेते खंगार को यहां का सूबेदार किया था। संवत् ११५६ (आनन्द) में खीची सरदार पृथ्वीराज के साथ शहाबुद्दीन के युद्ध में मारा गया था। तब खेते खंगार यहाँ का स्वतन्त्र शासक बन बैठा था। खेते खंगार के वंशजों का अधिकार संवत १३१३ (आनन्द) तक रहा। संवत् १३१३ (सन् १२५६ ई०) में बुन्देला सहनपाल ने खंगरों को सपरिवार मार कर बुन्देलखंड पर अपना अधिकार जमाया था। ऊपर के संवत ११४० तथा ११५६ और १३१३ रासे के आनंद संवत हैं। वे विक्रम संवत से ९१ वर्ष कम हैं और यथार्थ में संवत १२३० तथा १२४६ और १४०४ हैं अर्थात सन् ११७३ तथा ११८९ और १३४६ ई० के लगभग बैठते हैं।

हमीरपुर गजेटियर में लिखा है कि खंगार पहिले महत्व की जाति थी। कहते हैं कि चंदेलों के उपरांत मुसलमानों का महोबे का गवर्नर खंगार ही था। महोबा से बेतवा तक तथा झांसी के पश्चिम का देश बहुत वर्षों तक खंगारों के अधिकार में था। बुन्देलों ने उनको हराया था। अब ये लोग चौकीदार हैं।

खंगारों की शाख आरक हैं। खंगार और आरक साथ-साथ नहीं खाते। आरक पासियों के साथ खाते हैं और उनका ढंग भी उन्हीं के समान है। महोबा के निकट रैपुरा कलां के खंगार अपने को गढ़कुंडार के असली खंगारों का वंशधर मानते हैं। वे अन्य खंगारों को नीचा समझते हैं तथा उनको आरक कहते हैं। कदाचित सन् १२९३ या १२९५ ई० में महोबा से कालपी तक का महोबा का राज्य महोबा के कीरतसिंह भर राजा से विजय करके अलाउद्दीन ने वहाँ का शासन गढ़कुंडार के खंगार राजा के सुपुर्द किया था। महोबा की कथा है कि दिल्ली के बादशाह ने महोबा पर कब्जा कर लिया था और उसे खंगारों को सौंपा था। वहाँ सन् १३२२ ई० की बनी गयासुद्दीन तुगलक की एक मसजिद है, जिससे उस समय मुसलमानों का कब्जा होना प्रमाणित होता है।

यह निश्चित है कि गढ़कुंड़ार और महोबा का मध्यवर्ती देश दिल्ली के बादशाह के अधीन खंगार राजा के शासन में रहा है। खंगारों का मुख्य किला झांसी से १७ मील उत्तर-पूर्व कुंड़ार में था। सुमेरपुर (हमीरपुर) सुमेर खंगार के नाम से बसा था। यहाँ पुरानी ईंटें, चूड़ियाँ मिलती हैं। ११८० ई० में पृथ्वीराज ने वहाँ थाना कायम किया था। खंगारों का शासन बहुत समय तक स्थिर नहीं रहा और लगभग सन् १३४० ई० में अर्जुन पाल या सोहनपाल बुन्देला ने उसको नष्ट कर दिया।

जालौन गजेटियर में लिखा है कि १३ वीं शताब्दी में महोबा से पहूज तक का देश दिल्ली के अनुगामी कुंड़ार के खंगारों के अधीन था और वे दिल्ली के मांडलीक थे। सन् ११८२ ई० में चदेल राज्य नष्ट होने पर यह लोग दिल्ली की तरफ से एक लम्बे चौड़े प्रांत के शासक रहे थे। कूंच में पेश्तर कदाचित गूजर कुर्मियों का शासन था, फिर कुंडार के खंगारों का दखल हुआ था।

अर्जुनपाल बुन्देला ने सन् १३१३ ई० में मऊ माहौनी को, जो कूंच की पश्चिमी सीमा पर पहूज के किनारे है, अपनी राजधानी बनाया था। अर्जुनपाल के तीन पुत्र वीरपाल, सोहनपाल और दयापाल थे। वीरपाल पिता के उत्तराधिकारी हुए थे। कहते हैं कि सोहनपाल ने कुंड़ार गढ़ को जीता था और जैतरा में अपनी विजय पताका उड़ाई थी। दूसरी कथा है कि वीरपाल के गद्दी पर बैठने पर सोहनपाल को थोड़ी सी जागीर मिली थी। अतएव असंतुष्ट होकर उन्होंने अधिक भूमि पाने के लिये प्रयत्न किया था। वे कुंडार के खंगार राजा नाग के पास सहायता के लिये गए थे। नाग ने उनको दबा हुआ देखकर उनसे ब्याह-संबंध की बातचीत की थी। इस अपमानपूर्ण बात से रुष्ट होकर सोहनपाल कुंडार से जाने लगे थे। नाग ने उनको जबर्दस्ती रोक कर अपनी बात मानने के लिये विवश करना चाहा था, पर सोहनपाल युक्ति से खिसक गए थे। वे इस अपमान का बदला लेने में सहायक होने के लिये पहले नाग के एक सेना नायक मुकुटमनि चौहान के पास गए थे। चौहान ने झगड़ा आ पड़ने पर निर्पेक्ष रहने का वादा किया था। अन्य क्षत्रिय सैगर, चौहान और कछवाहों ने सोहनपाल की क्षत्रियोचित बात को उचित कहा था, पर साथ देने का साहस नहीं किया था। केवल पुण्यपाल पंवार ने उनकी तदबीर में योग दिया था। अन्त में ब्याह की बातचीत के सिलसिले में नाग को सकुटुम्ब अपने घर बुलाकर सोहनपाल और पुण्यपाल ने कत्ल कर डाला था। इस कथा से जान पड़ता है कि १३वीं शताब्दी के अन्त में सोहनपाल ने खंगारों का राज्य छीन लिया था।

झांसी गजेटियर में लिखा है कि खंगार झांसी और हमीरपुर के राजा थे। चंदेलों के बिगड़ने पर ये कुंडार (ओरछा राज्य) में जम गये थे और अपने को राजपूत कहते थे। सन् १२०२ से १३०३ ई० तक मुसलमानों के हमले देश पर होते रहे थे। उस समय का अंतरंग इतिहास अप्राप्य है। कदाचित इसी समय में राजपूतों की विभिन्न जातियां यहां आबाद हुई थीं। कहते हैं कि चंदेलों के उपरान्त महोबा पर खंगारों का अधिकार हो गया था। वे दिल्ली के अनुगामी थे। अब उनकी संख्या बहुत कम है। परन्तु उस समय उनके राज्य में झांसी जिला (खास) भी था। उनकी राजधानी झांसी से २० मील उत्तर पूर्व गढ़ कुंडार (अब ओरछा राज्य) में थी। उनका राज्य केवल ८० वर्ष के लगभग रहा था। उनका विशेष ब्योरा नहीं मिलता है। अनुमान होता कि राजपूत राजा लोग उनके नाममात्र के अनुगामी रहे होंगे। बुन्देलों के द्वारा (संवत् १३४५ सन् १२८८ ई० में) उनका पतन हुआ था।

उसका वृतान्त इस प्रकार है कि गनेश खेरा के धंधेरों के संबंधी सोहनपाल बुन्देला ने अपने भाई वीरपाल (माहोनी) के विरुद्ध नाग खंगार राजा से सहायता चाही थी। नाग ने कहा था कि यदि अपनी कन्या हमको ब्याह दो और हमारे साथ खाना खाओ, तो सहायता मिलेगी। तब सोहनपाल खंगारों के विरुद्ध सहायता के लिये खंगार राजा के चार हजार के सेनानायक तथा धंधेर देव के वंशज मुकटमन चौहान के यहां गए थे। उसने निर्पेक्ष रहने का वचन दिया था। फिर सलिगर, चौहान और कछवाहों से भी सहायता मांगी थी पर उन्होंने उत्साहित करके भी इंकार कर दिया था। केवल करेहरा के पुण्यपाल पंवार ने सहायता दी थी। दोनों नाग को मारने तथा उनकी तेरह लाख की भूमि छीनने की सलाह की थी। तब सोहनपाल ने कुंडार जाकर प्रत्यक्ष में ब्याह करता स्वीकार किया था और नाग को अपने यहां न्यौत बुलाया था। जब सब खंगार शराब में मस्त हो गये थे, तब उनको, उनके भाई, मंत्री तथा साथियों सहित मार कर राज्य पर अधिकार कर लिया था। पुण्यपाल ने मुकटमन को अपना मंत्री बनाया था और अपनी कन्या भी उनको ब्याह दी थी तथा इटौरा गांव उनको (?) दिया था। अपने छोटे भाई दयालपाल को एक लाख की जागीर दी थी। निदान इस प्रकार खंगारों का राज्य नष्ट हुआ था। ललितपुर विभाग के देवगढ़ में करनाली का पुराना किला है। वहां गुप्त समय तक के मंदिर, भवन आदि हैं। वहीं सिद्ध गुफा में एक लेख है कि—"राजा वीर ने कुंडार को संवत् १३४५ सन् १२८८ ई० में विजय किया था।"

सागर गजेटियर में लिखा है कि खंगार और चड़ार प्रायः चौकीदार होते हैं। खंगार ऊंची जाति की शाख जान पड़ते हैं। वे कहते हैं कि वे पहले बुन्देलखंड के राजा थे और एक स्त्री के सिवाय सब कतल कर दिये गये थे। उनकी कथा इस प्रकार है कि उस बची हुई स्त्री ने कुसुम के पेड़ के नीचे बच्चा जना था। उस समय वहां एक फकीर (जोगी) आया। स्त्री ने उससे अपने को दांगी बतलाया। तब फकीर ने अपने दांगी पड़ोसी के पास उसे भेज दिया। दांगी ने उसको आश्रय दिया तथा एक ब्याह में शामिल किया। इसीलिये दांगी खंगार को अपना मैर (ब्याह समय कुलदेव के पूजन का प्रसाद) देते हैं। फकीर खंगार की लड़की के ब्याह में भीख नहीं मांगते। खंगार कुसुम रंग का कपड़ा नहीं पहनते।

मरहठा समय में खंगार प्रख्यात चोर थे और उनकी बहुत सी कहावतें हैं—'खंगार का बल खनता में है' 'सुनार और खंगार साथ रह सकते हैं, क्योंकि खंगार का चोरी का माल सुनार लेता है।' अब ये लोग अपराध कम करते हैं। चड़ार गजी भी बनाते हैं और संस्कृत के चीरकार से चिरार भी कहाते हैं।

सेन्ट्रल इंडिया सेंसस रिपोर्ट सन् १९०१ ई० में लिखा है कि खंगार बुन्देलखंड के बहुत कुछ भाग के आदि निवासी तथा शासक (होना) मामूल होते हैं। वे द्रविड़ कुल के थे। अब उनकी तीन शाखें—राज खंगार, आरख और धानुक हैं। धानुक शाख के संबंध में संदेह है तथा यहां उनकी विशेषता नहीं। इन तीनों की और भी शाखें हैं। इनमें राजखंगार मुख्य हैं और आरख तथा धानुक जंगली जाति समझे जाते हैं। राजखंगारों के विषय में कथा है कि कुंडार का राजा एक खंगार था। उस समय बुन्देला इस देश में आ रहे थे। एक बुन्देला सरदार खंगार के दरबार में था। उसकी सुन्दर लड़की पर खंगार राजा का पुत्र आशक्त हो गया था। तब खंगार राजा ने बुन्देला सरदार से लड़की ब्याह देने को कहा था। बुन्देला ने पशोपेश में पड़कर कहा कि हम बिरादरी से सलाह करके उत्तर देंगे। अंत में यह तै हुआ कि खंगार तथा राजपूत एक साथ पहले भोजन करें। निदान इस भोज में बहुत से राजपूत एकत्र हुए थे। जब खंगार लोग शराब पीकर मस्त हो गये, तब सब राजपूतों ने उन सबको कतल कर डाला था। केवल एक गर्भवती स्त्री बची थी। वह कुसुम के बगीचे में छिप रही थी। एक सांडल ब्राह्मण ने यह वादा कराके कि 'पुत्र हो तो वह बुन्देलों की जूती बर्दारी का काम करे'—उस स्त्री की जान बचाई थी। उसके पुत्र हुआ और वह तथा उसके वंशधर बुन्देला राजाओं के सेवक हुए। तभी से वे 'राज खंगार' कहलाये थे। उसी बची हुई खंगार स्त्री के पीछे एक

वर्णशंकर लड़की हुई थी। उसका नाम आरख था। उसकी संतान आरख कहलाई। समाज में उनका नीचा दर्जा हुआ था और वे जंगल में रहने लगे थे।

राज खंगार प्रायः हिन्दू धर्म के उसूलों पर आ गये हैं। वे खेती करते हैं। सिपाहीगिरी का भी काम करते हैं। उन्होंने प्राचीन तर्ज बिलकुल छोड़ दिया है। उनमें कभी-कभी विधवा विवाह हो जाता है, परन्तु वह प्रायः बुरा समझा जाता है। वे शराब से परहेज करते हैं। जात कर्मों में ब्राह्मणों से सहायता लेते हैं। जामुन की पत्तियों से ब्याह का मंड़वा छाते हैं। नथ पहनाने को स्त्रियों की नाक छिदाते हैं और हिन्दू देवों को पूजते हैं।

आरख प्रायः शिकार खेलते रहते हैं। सिपाहियों में भरती नहीं किये जाते। उनमें विधवा का नियम है। वे शराब पीते हैं। ब्राह्मणों से काम नहीं लेते। मंड़वा कांस से छाते तथा स्त्रियों की नाक नहीं छिदाते हैं। वे चोरी करने में प्रख्यात हैं। उनका मुख्य देवता सर्प 'कर्तल देव' है। धानुक शाख के लोग बहुत नहीं हैं। उनकी रीतियाँ और ढंग आरखों के समान होते हैं। धानुक सुअर रखते हैं। राज खंगार और आरख उनसे संबन्ध नहीं करते हैं।

राज खंगारों तथा आरखों का निस्सन्देह रक्त संबन्ध है और वे स्वयं इस बात को स्वीकार करते हैं। राजखंगार हिन्दू होकर भी अपने पुराने कुल नाम लिये हुए हैं। उनकी ये शाखें हैं—(१) बेल गोतिया (२) बेला गोतिया, (३) समद गोतिया (४) सूरज (५) गुबाय (६) नाग (७) घुर (८) हाथी (९) गऊ (१०) मगर (११) चंदन गुवाय (१२) कुसुम (१३) नीम (१४) करील (१५) चाँवल (१६) हलदी (१७) भरत (१८) बट। आरख की ये शाखें हैं—(१) लहर गोतिया (२) ईंट (३) हाथी (४) गऊ (५) पाहन (६) चंदन (७) चाँवर (८) घोड़ा (९) सांडल।

बा० गोविंदास (खंगार) लिखते हैं—'खांगर' या 'खंगार' बिगड़े हुए शब्द हैं। वे 'खड्गाहार' का अपभ्रंश हैं, जिसका अर्थ 'खड्ग के द्वारा अपनी जीविका निर्वाह करने वाला' है। इस जाति के आचरण, रूप-रंग, रहन-सहन भी उनके उच्चकुल संबंध के अनुमोदक हैं।

खंगार काठियावाड़ में अच्छी स्थिति में हैं। जूनागढ में उनका प्रसिद्ध प्राचीन किला है। वह 'राव खेंगार' का है। खांगरों के गोत्र चंदेल, डांकड़, कछवाहा, गौर आदि ठाकुरों से मिलते हैं। सुनते हैं कि कहीं-कहीं परिहार ठाकुर इनको हुक्का देते हैं।

खंगरोत् सामन्तों के कितने ही नाम राजपूताना के इतिहास-ग्रन्थों में मिलते हैं। खंगार और खंगरोत शब्द परस्पर प्रकाश डालते हैं। हूणों की

मुख्य घटनाओं पर विचार करने से खांगर उनके वंशज भी जान पड़ते हैं। क्षत्रियों ने दोनों को दबाया था।

सभी तथ्यों से प्रमाणिक है कि १२ वीं और १३ वीं शताब्दी में खंगार लोग बुन्देलखंड में शासक थे। वे कभी स्वतंत्र और कभी दिल्ली के अनुगामी रहे थे। महोबा और गढ़ कुंडार उनके शासन-केन्द्र थे। उनके राज्यकाल में कई राजपूत उनके जागीरदार थे। सहनपाल बुन्देला ने ब्योना गाँव खंगार राजा से पाया था। पीछे उन्होंने वह जागीर अपने भाई सहजेन्द्र[१२] को सौंप दी थी। खंगार जाति को तस्कर वृत्ति का दोष लगाया जाता है, पर वे अधिक दंडित होते नहीं देखे जाते। चंदेलों, पंवारों और चौहानों के अनुगमन में रक्त बहाकर खंगारों ने युक्तिपूर्वक राज्य प्राप्त किया था, परन्तु बहुत दिन तक उसका उपभोग नहीं कर पाये।

यह कहा जा चुका है कि खेते खंगार पृथ्वीराज चौहान द्वारा नियुक्त सूबेदार था, जिसने बाद में स्वतंत्र सत्ता कायम की। इसके सिवा दूसरी कथा यह भी है कि परमाल चंदेल ने कुंडारगढ़ शिया परमार को सौंपा था। उरई में शिया मारा गया था, चंदेल निर्बल हुए थे और पृथ्वीराज बहुत दूर दिल्ली को गए तथा मारे भी गये थे। इस गड़बड़ में गोंड़ों ने पूर्व-दक्षिणी भाग पर कब्जा कर लिया था और खंगारों ने टहरौली तहसील पर अधिकार कर लिया था। उस समय उनका नेता खूबसिंह या खेतसिंह खंगारी था, जो शिया का मातहत रह चुका था। अवसर पाकर वह शिया के देश का स्वतंत्र स्वामी बन गया था।

कहते हैं कि दिल्ली के बादशाह मुईजुद्दीन कैकुबाद के हुक्म से मीरहसन साहब शाह मलिक कीर्तिपाल भर को दंड देने के लिये महोबा आया था, क्योंकि कीर्तिपाल ने महोबा के मुसलमानों को तंगकर रक्खा था। जब मलिक के घराने में कोई न रहा और कीर्तिपाल का वंश भी समाप्त हो गया, तब सन् १२८८ ई० में दिल्ली के बादशाह ने महोबा की रिसासत गढ़ कुण्डार सहित खंगारों के सुपुर्द कर दी थी।

महौनी के अर्जुनपाल (सन् १२१५-३१ ई०) बुन्देला के पुत्र सोहनपाल, वीरपाल और दयापाल थे। अर्जुनपाल के साले शाहाबाद के धंधेरे मुकुटमणि थे। वीरपाल के वंशज ब्योजना गाँव (कोंच से ४ मील) खंगारों से अलग

---

१२. सहजेन्द्र सोहनपाल बुन्देल का सुपुत्र माना गया है। (बुन्देलखंड का संक्षिप्त इतिहास, पृ० १२२, ३८३)

जागीर में पाये थे । अर्जुनपाल के उपरांत सोहनपाल माहौनी के राजा हुए । किसी हिकमत से वीरपाल ने उनसे राज्य छीन लिया था और सोहनपाल को छोटी जागीर दे दी थी । असंतुष्ट हो सोहनपाल भाग्य परीक्षा के विचार से जागीर छोड़ चल दिये थे । कुछ दिन इधर-उधर बेतवा किनारे ठहरे थे । उस समय राजपूत मुसलमानों के दबाव से निर्बल हो रहे थे । सोहनपाल को पाकर वे बेतवा किनारे उनके पास एकत्र हो गए थे । सोहनपाल उनकी सहायता से महौनी लेना चाहते थे । खंगार राज्य से भी सहायता लेना चाहते थे ।

उस समय कुण्डार में खूबसिंह खंगार का वंशज हुरमतसिंह राजा था। वह राज्य के भोग-विलाम में लिप्त था । सोहनपाल ने हुरमतसिंह के पास सहायता का पैगाम भेजा था । कुण्ड़ार के महाजन विष्णु दत्त पांडे—शिफारसी हुए थे । अंत में हुरमतसिंह इस शर्त पर सहायता देने को राजी हुए कि सोहनपाल अपनी बेटी खंगार को ब्याह देवें । यह प्रस्ताव सुन सोहनपाल क्रोध से भभक उठे । भाई से राज्य छीनने के बदले उन्होंने खंगारों को ही नाश करने की ठानी । उन्होंने सब राजपूतों को यह कथा सुनाकर खंगार-विध्वंश में सहायता चाही । अन्य राजपूत केवल हुरमत सिंह की भावना अनुचित होने का प्रस्ताव पास करके ही रह गए थे, खंगारों के विरुद्ध सोहन पाल का साथ देने को तैयार नहीं हुए थे । अलबत्ता पंवांर और धंधेरे सोहनपाल के साथ हुए थे ।

सोहनपाल ने मामा मुकुटमणि से भी, जो खंगारों के सेनानायक थे, सहायता मांगी थी । उन्होंने निर्पेक्ष (उदासीन) रहने का वचन दिया था। निदान प्रत्यक्ष में ब्याह करना स्वीकार कर सोहनपलाल ने खंगार राजा को न्यौत देकर बुलाया था । सब खंगार सोहनपाल के यहाँ आये थे । उन्होंने भोजन करके खूब शराब पी थी । बुन्देला तैयार थे ही । उन्होंने उसी समय उन्मत्त खंगारों को तलवारों से काट डाला था । फिर क्रोध के आवेश में उनके स्त्री बच्चों को भी ढूंढ़-ढूंढ़ कर मार डाला था । केवल एक गर्भवती स्त्री कुसुम के खेत में छिप कर बच्ची थी । उसी का बच्चा वर्तमान खंगारों का मूल पुरुष हुआ था । वह स्त्री अघोरी फकीर की सहायता से एक दांगी के घर पहुंची थी । उसने उसे आश्रय दिया था । कदाचित बुन्देलों द्वारा केवल कुण्डार तथा उसके आस-पास के खंगार ही मारे गये थे । क्षेत्र उनके अधीन हो गये थे । निदान खंगारों को हटाकर सोहन पाल कुण्डार के राजा हुए थे । फिर ओरछा में उनकी राजधानी कायम हुई थी ।

संसार की राजनीति तथा राज्य-प्राप्ति की नीति यही आज्ञा देती है कि राज्य-वृद्धि के लिए जो जो समुचित उपाय किये जावें, सफलता होने की दशा

में लोक द्वारा वे सब ही उचित तथा प्रशंसनीय माने जाते हैं । किसी-किसी ने हुरमत सिंह के स्थान में नाग का नाम लिखा है तथा सोहनपाल के स्थान में अर्जुनपाल भी कहा जाता है । यह भी कहते हैं कि जब महोबा में खंगार राजा सुख भोग रहे थे, तब अर्जुनपाल जाकर उनके नौकर हुए थे । सब सेना उनसे प्रसन्न हो गई थी । एक समय खंगार राजकार्यवश गोंड़वाने की ओर सपरिवार गए थे । उस समय वे राजकार्य अर्जुनपाल को सौंप गये थे । अर्जुन-पाल को वह अच्छा अवसर मिला था । वे पेशवाई के बहाने से पन्ना की घाटी में जा पहुँचे थे । ज्यों ही खंगार राज लौटे, अर्जनपाल ने धावा कर उनको सपरिवार मार कर महोबा का राज्य ले लिया था ।

गिरनार जूनागढ़ खंगारों का तीर्थ है । जूनागढ़ में नौघन राजा था। उसका पुत्र राय खेंगर सन् १०६८ ई० में गद्दी पर बैठा था। इसकी रानी राणक देवी थी । पाटण के सिद्धराज से उसका युद्ध हुआ था । उसी में वह मारा गया था । राणक देवी सती हुई थी । बुदेल्ल खण्ड के खंगारों की एक शाखा अपने को जूनागढ़ी कहती है ।

इतिहास गढ़ाकोटा में लिखा है कि सब खङ्गार पुरुषों को कतल कर चुकने पर भी बुन्देलों का क्रोध शांत नहीं हुआ था । उनका ध्यान इधर-उधर भगे लोगों की तरफ गया था । खोज-खोज कर उन्होंने उनका भी नाश कराया था । इस सिलसिले में वे लगभग निर्मूल से हो गये थे । कहते हैं कि एक गर्भवती स्त्री एनकेन प्रकारेण छिपकर भागी थी, पर पकड़ी गई थी । घिर जाने पर उसने प्राण भिक्षा के विनय की थी और शपथ खाकर कहा था कि 'इस गर्भ से यदि लड़की जन्मी, तो बुन्देलों की दासी बनेगी और यदि पुत्र होगा, तो वह और उसके सब वंशवाले बुन्देलों के घरानों की नकीबी करके पैरों के जूता उठावें और पहनावेंगें ।' ऐसा वचनवद्ध होने पर उसकी जान छोड़ दी गई थी । उस खङ्गार स्त्री के गर्भ से एक बालक हुआ था । उसके सब वंश वाले अपनी जननी की प्रतिज्ञा के अनुसार बुन्देलों के बड़े ही अच्छे और सच्चे सेवक तथा अनुगामी हैं, तथा बुन्देला भी उनसे संतुष्ट रहते हैं ।

(कुंवर पृथ्वीसिंह बुंदेला, छतरपुर के सौजन्य से)

बुंदेलों में अनुनासिकता

● डा० कान्ति कुमार जैन

१. किसी भी बोली के बोलने वालों को हम जितनी आसानी से उसके उच्चारणों से पहचान सकते हैं, उतनी आसानी से किसो अन्य विशेषता से नहीं। बुन्देली भाषियों की विशेषता है अनुनासिकता। वे अकारण ही शब्द को अनुनासिक बना देते हैं। अच्छे पढ़े-लिखे, अभिजात और अन्यथा आधुनिक व्यक्ति भी बोलते समय बहुत आसानी से पहचाने जा सकते हैं कि वे बुन्देलखण्डी हैं। भूंख, हांथ, सांथ जैसे उच्चारण बुन्देली भाषी की जबान पर बसे रहते हैं। इसका कोई शरीर-मनोवैज्ञानिक कारण है अथवा भौगोलिक—यह कहना कठिन है किन्तु अकारण अनुनासिकता बुन्देली-भाषी की विशेषता है, इसमें कोई संदेह नहीं।

२. वे व्यंजन ध्वनियां, जो भीतर से बाहर आने वाली वायु के नाक के छिद्रों में से होकर गुजरने से उत्पन्न होने वाली गूंज से उच्चारित होती है, अनुनासिक कहलाती हैं।

हिन्दी व्यंजनों के पांच वर्गों के अन्तिम व्यंजन अनुनासिक है अर्थात् ङ, ञ, ण, न, म। प्रत्येक वर्ग के प्रथम चार व्यंजन निरनुनासिक हैं क्योंकि कोमल तालु के नीचे झुक जाने के कारण जीभ अनुनासिक व्यंजनों की तरह तालु के पिछले भाग को कुछ कम झुकाती है, निरनुनासिक स्पर्श व्यंजनों के उच्चरण में कौआ सहित कोमल तालु कुछ पीछे को हटा रहता है।

हिन्दी में पांचों अनुनासिक व्यंजन वैदिक ध्वनियों की परम्परा में गृहीत हैं किन्तु ङ, ञ का उच्चारण हिन्दी में वैदिक ङ, ञ जैसा नहीं होता है।

३. ङ अनुनासिक सघोष अल्प प्राण कंठय ध्वनि है। हिन्दी में इसका प्रयोग अत्यंत सीमित है जैसे कङ गन। ञ अनुनासिक सघोष अल्पप्राण तालव्य ध्वनि है। इसका प्रयोग भी हिन्दी में अत्यन्त सीमित है। संस्कृत शब्दों के अतिरिक्त हिन्दी की बोलियों में यह ध्वनि मिलती है जैसे सां ञ। न अनुनासिक सघोष अल्प प्राण अल्प ध्वनि है जैसे नरेटी, कनखजूरा, कान। म अनुनासिक सघोष अल्पप्राण ओष्ठ्य ध्वनि है जैसे मरी, तुमाओ, चाम।

४. डॉ० धीरेन्द्र वर्मा की मान्यता है कि स्वर सहित ङ हिन्दी में नहीं पाया जाता। शब्दों के आदि या अन्त में भी इच्छा व्यवहार नहीं होता।

यही स्थिति ञ की भी है ञ और ङ का प्रयोग न के समान होता है जैसे कन्घा (कङघा), चन्चल (चञ्चल)।

वास्तव में अनुनासिक व्यंजन अपने वर्ग विशेष की निरनुनासिक ध्वनियों के साथ ही व्यवहृत होना चाहिये जैसे –

ङ	शङकर, गङगा
ञ	चञ्चल, व्यञ्जन
ण	कण्ठ, दण्ड
न	तन्तु, जन्तु, कान्त
म	कम्प, पम्प, रम्भा, कुम्भ

किन्तु हिन्दी में टंकण और मुद्रण की सुविधा के लिए अनुनासिक के स्थान पर अनुस्वार का प्रयोग होने लगा है।

अनुस्वार पहले य र ल व स श ष ह के पहले ही प्रयुक्त होता था जैसे संशय, वंश किन्तु अब अनुनासिक और अनुस्वार में भेद नहीं रह गया है। और तो और चन्द्र-बिन्दु (जिसे अर्धचन्द्र भी कहते हैं) और अनुस्वार हिन्दी लेखन में अब एक हो गये हैं। हंस और हँस या कंप और कँप एक ही प्रकार से लिखे, छापे जाने लगे हैं। इन ध्वनियों के अतिरिक्त न्ह, म्ह, भी अनुनासिक मानी जाती है, किन्तु बहुत से विद्वान इन्हें मूल व्यंजन न मानकर संयुक्त व्यंजन मानते हैं।

हिन्दी की अनेक बोलियों में अनुनासिकता की प्रवृत्ति देखी जाती है। डिंगल में शब्दों को सामान्यत: अनुनासिक कर दिया जाता था। हिन्दी की अनेक बोलियों में ण के स्थान पर न का प्रयोग होता है जैसे राणा=राना, गणेश=गनेश।

बुन्देली उन बोलियों में से है जिसमें अनुनासिकता की प्रवृत्ति प्रचुरता से पाई जाती है। यह अनुनासिकता दो प्रकार की है, अकारण और सकारण। यदि शब्द में कोई भी अनुनासिक ध्वनि न हो, किन्तु उसका उच्चारण सानुनासिक होने लगे तो उसे अकारण अनुनासिकता कहते हैं। बुन्देली के कतिपय उदाहरण उल्लेखनीय हैं जैसे भूंख, हांथ, औंठ, सांप, फांस, डांक। वे शब्द जिनमें किसी अनुनासिक ध्वनि के कारण अनुनासिकता आती है। सकारण अनुनासिकता के उदाहरण होते हैं जैसे भैंस, हाथी, गेहूँ, इंमली, चाँवल।

खड़ी बोली में ङ, ञ की ध्वनियां उच्चारित नहीं होतीं, किन्तु वे छतरपुर के आस-पास के गड़रियों और अहीरों की बोली में सुनाई देती है। बुन्देलखण्ड में अनुनासिकता की प्रवृत्ति यह भी है कि साधु हिन्दी में जहां ण के

स्थान पर न हो जाता है, वह बुन्देली में ण के स्थान पर ङ भी हो जाता है जैसे गड़ेश !

कहा गया है कि य र ल व श ष स ह के पहले अनुस्वार का प्रयोग होता है, अनुनासिक ध्वनियों का नहीं। किन्तु बुन्देली में अन्याई, कन्वा शब्द सुनाई देते हैं।

अनुनासिकता की प्रवृत्ति बुन्देली में बढ़ती जा रही है। जिस शब्द में एक भी अनुनासिक हो जाती है, उसमें प्रायः सभी परवर्ती ध्वनियां भी अनुनासिक हो जाती है जैसे :—हंम, गुंना। किन्तु यह प्रवृत्ति बुन्देली में ही पाती जाती है, ऐसा नहीं है। आगरा जिले में प्रचलित ब्रज में भी अनुनासिकता की प्रवृत्ति बढ़ते की सूचना भाषाविदों ने दी है।

—आचार्य एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, सागर विश्वविद्यालय।

कहानी

पटाक्षेप

—डा० स्वराज्यमणी अग्रवाल

मेरे पति क्या थे, मानो थानेदार या हवलदार थे। जल्लाद को भी शायद फांसी देने के पूर्व मुजरिम पर दया आती होगी, पर उन्हें मेरे ऊपर कोड़े उठाने में कभी दया न आई। प्रत्येक छोटी-सी भूल पर वे थप्पड़, लात, जूता, कोड़ा लिये मौजूद रहते थे। मेरा जीवन भय और आंसू की एक दयनीय तस्वीर बन कर रह गया था। यौवन की उमंगें उनकी डांट और मार के आगे गमकना भूल गयी थीं। अपनी बेबसी और मजबूरी पर तरस आता था। क्या मैंने इसी दिन के लिए पढ़ा-लिखा था ? कभी-कभी मन तड़प उठता था, इन जंजीरों को तोड़कर दूर, कहीं दूर ऐसी जगह चली जाऊँ, जहाँ किसी मर्द का साया भी कभी न पड़े। मर्द जाति से मुझे नफरत हो गयी थी। इन्सान के रूप में पैदा हुए हैवान—ये औरत को समझते क्या हैं ? इनसे बेहतर तो पशु हैं, जो आपस में एक दूसरे से प्रेम तो करते हैं। पर मर्द की यह जाति कितनी स्वार्थी, शक्की, बेरहमी, चाण्डाल से भी बढ़कर नीच होती है, यह मैंने विवाह के बाद ही जाना।

विवाह के पूर्व मेरा घर सोने की वह बगिया थी, जहाँ मेरी कामनाओं के फूल फूलते थे। भाई था, जो बहन की हर बात पर जान न्योछावर करता था। पिता थे, जिनके होठों से मेरा नाम ही शहद की तरह घुला हुआ निकलता था। ऐसे प्रफुल्लित वातावरण में पली थी मैं। मैंने सोचा भी नहीं था कि मुझे जीवन में ऐसा दिन भी देखना नसीब होगा। मैं एक ऐसे दोराहे पर खड़ी थी जहाँ एक ओर ममता मिमियाती थी और मात्र पतिव्रता होने का ढोंग रचने में ही अपना हित नजर आता था। दूसरी ओर इस अन्याय के प्रति बगावत की भावना भी अपनी सारी सीमाएँ तोड़कर बाहर आना चाहती थीं। पति नाम की चीज से मुझे नफरत हो गयी थी। विवाह के पूर्व के सारे सपने, पति के लिए सुखद कल्पनाएँ, मधुर उमंगें, तरह-तरह के प्रेम के सपने सब जाने कहाँ चले गये थे। ऐसा लगता था कल्पना के झरोखे में बन्द होकर यौवन के सपने एक-एक करके आजाद पंछी की भाँति उड़ गये हैं। इस पिंजड़े

में तड़पने, तिलमिलाने को एक मैं ही बची थी, जो आजाद होना चाह कर भी आजाद नहीं हो पाती थी। एक जिम्मेदारी का बोझ मेरे सारे विद्रोह को शांत कर देता था। एक छोटा-सा शिशु था, उसका क्या करूंगी? यह प्रश्न मेरी आजादी के सारे मन्सूबों को खाक में मिला देता था।

कालेज में कैसी हंसी ठिठोली हम लोग करते थे। स्कूल के दिनों से ही एक संकोच-सा मन में उभरने लगा था। किशोरावस्था की भावनाएँ उबल-उबल कर सामने आना चाहती थीं, पर समाज और परिवार के प्रतिबंध मन के उद्दाम वेग को संकोच के घेरे में घेरे रहते थे। वे सुनहले दिन कब चले गए, पता नहीं चला। याद नहीं आता, कब यौवन आया और कब चला गया। चला गया ही कहेंगे, क्योंकि ५० वर्ष की उम्र बीतते-बीतते मुझे ऐसा लगने लगा है कि जैसे मैं एकदम बूढ़ी ८० वर्ष की जर्जर बुढ़िया हो गयी हूँ।

कालेज के दिनों का वो हंसना, खिलखिलाना न जाने कब भूल चुकी हूँ। बस एक ही याद बार-बार मन को तड़पा जाती है। आज अगर उसकी छांह तले मैंने अपनी यौवन की चादर बिछाई होती; तो मेरा यौवन सार्थक हो जाता, मेरा जीना सार्थक हो जाता। पर हाय रे! समाज और परिवार के यह सड़े-गले कानून। हम अपने मन की बात भी जुबां पर नहीं ला सकते। जीवन हमें बिताना पड़ता है, पर जीवन साथी चुनने का अधिकार हमें नहीं दिया जाता। खूंटे की गाय की तरह मां-बाप जिस-तिस के साथ बांधकर अपने कर्त्तव्यों की इतिश्री मान लेते हैं। ये कहां का न्याय है, कहां का कानून है कि लड़का वाला तो अपनी हर मांग, हर इच्छा खुले आम पूरा करता है, पर लड़की को एक शब्द भी नहीं बोलने दिया जाता। कब तक नारी जाति अपने ऊपर होने वाले इस अत्याचार को सहती रहेगी? यदि मेरा भी विवाह मेरे मन चाहे सहपाठी के साथ होता, तो मेरा और उसका दोनों का जीवन कितना सुखमय होता। पर लगता है, समाज के सारे कानून किसी अत्याचारी, जुल्मी, राक्षस पुरुष ने बनाये होंगे, जिसके मन में नारी के प्रति जरा भी मोह, जरा भी आदर की भावना न रही होगी। तभी तो समाज में नारी को दूसरे स्तर का दर्जा दिया गया। इस प्रकार जब कभी मेरा मन विद्रोही भावनाओं से उबल-उबल कर बाहर आना चाहता, तो मुझे अपने एक सहपाठी की याद बरबस आ जाती थी, जो हर वक्त मुझ पर अपने प्राण न्यौछावर करने को तैयार रहता था।

अचानक ही रास्ते में एक दिन उससे मुठभेड़ हो गयी थी। मैं रिक्शे से जा रही थी और वह साइकिल पर आ रहा था। परीक्षा के दिन थे। मैं पढ़ने

में तन्मय थी, ध्यान ही नहीं दिया कब रिक्शा रुका, कब टकराया और मैं कब सारी किताबों सहित औंधे मुंह पर आ पड़ी। होश नहीं रहा। नवयुवक एकदम घबरा गया। उसने आस-पास देखा, कोई नजर नहीं आया। उसने पास ही से पानी लाकर मुझे होश में लाना चाहा। घबड़ाहट से वह पसीने-पसीने हो रहा था। ऊपर से रिक्शे वाला निरन्तर उसे गालियां सुनाये जा रहा था। मुझे होश आया तो सुना—रिक्शे वाला अंधाधुन्ध बके जा रहा था। इतने में लोग भी इकट्ठे होना शुरू हो गये। चारों तरफ भीड़ लगने लगी। मैंने संकोच में उठने की चेष्टा की, परन्तु उठते ही बड़े जोर की चीख मुंह से निकल गयी। मुझसे खड़ा नहीं हुआ जा रहा था। मेरी आंखों से बरसते आंसू मेरा दामन भिगो रहे थे। मैंने रोते-रोते ही कहा—'१० बजे से मेरी परीक्षा शुरू हो जाएगी, मैं फेल हो जाऊँगी।'

पास खड़े लोगों में खुसर-पुसर चल रही थी। तभी उस नवयुवक ने मुझे ढ़ाढ़स बँधाते हुए कहा—'मैं आपको कालेज तक ले चलता हूं, आप घबड़ाए नहीं। अभी दस नहीं बजे हैं, आप अपनी परीक्षा अच्छी तरह दे सकेंगी।' वह दौड़कर एक टैक्सी बुला लाया। पर मुझ से तो खड़ा ही नहीं हुआ जा रहा था। उसने सहारा देकर मुझे टैक्सी में बिठाला, अपनी साइकिल उसने पास के ही एक मकान में रख दी। मेरे साथ ही साथ वह कालेज तक आया।

रास्ते भर हम दोनों चुप थे। मैं दर्द और घबराहट से रोये चली जा रही थी और वह बेबस-सा मुझे देख-देख कर, बेचैन हुआ जा रहा था। आखिर कालेज आ गया। मैं टैक्सी में ही बैठी रही, मुझसे उतरा नहीं जा रहा था। वह जाकर मेरी कालेज की प्रिंसिपल को बुला लाया। मैंने प्रिंसिपल से सब हाल कहकर मुझपर रियायत करने की याचना की। अपने कालेज की बेहतरीन छात्राओं में से मैं एक थी। प्राचार्या ने मुझे नीचे के ही हाल में बैठकर लिखने की अनुमति दे दी। मैं लिखती कैसे, बहुत नर्वस हो गयी। पैर में बेहद दर्द था, हाथ में भी कई स्थानों पर जख्म थे। नवयुवक ने प्राचार्य से कहा—'यदि वे आज्ञा दें, तो मैं बोलती जाऊँगी और वह लिखने का कार्य कर देंगे।'

प्राचार्य ने बड़ी मुश्किल से उसकी यह बात मानी। उन्होंने कहा—कि अभी तो इसके चार पेपर बाकी हैं, ये अपने सारे पेपर कैसे देगी? मेरा बी० एस-सी०, होम साइंस का फाइनल ईयर था। किसी भी हालत में मैं अपना डिव्हीजन खोना नहीं चाहती थी। मैंने प्रचार्या से कहा—'मैडम, आज के बाद मेरा चार दिन का गैप है, तब तक मैं स्वस्थ हो जाऊँगी और स्वयं सब

पेपर कर लूँगी।' प्राचार्या ने अनिश्चय की मुद्रा में सर हिलाते हुए अनुमति दे दी।

मेरे सामने एक टीचर और वह युवक बैठ गया। मैं बोलती गयी और वह लिखता गया। प्राचार्या ने मुझे दर्दनाशक दवा पहले ही दे दी थी, फिर भी पैर का दर्द कभी-कभी मेरे आँख में आँसू ला देता था। बड़ी मुश्किल से तीन घण्टे व्यतीत हुए और मैं घर जाने के लिए उठी। मुझसे खड़े होते नहीं बन रहा था। मैं समझ बैठी थी कि मेरे पैर में मोच आ गयी है। पर वह भ्रम निकला। पैर में स्प्रेन हो गया था। नवयुवक ने पुनः एक टैक्सी करके मुझे घर तक पहुँचाने का प्रस्ताव रखा। प्राचार्या ने जब गौर से उसकी ओर देखा—'आप इनके क्या लगते हैं?' उनकी धीर गम्भीर मुद्रा में पूछे हुए प्रश्न से युवक जैसे चौंक उठा। रुक-रुककर बोलते हुए उत्तर दिया—'मैं इनका कोई नहीं लगता, न ही इनका नाम जानता हूँ। यह एक्सीडेन्ट मेरे कारण हुआ, इसलिए मैं इनकी इस हालत के लिए अपने को जिम्मेदार समझता हूँ।' प्राचार्या ने उसकी ओर शंकित निगाहों से देखते हुए पूछा—'आप क्या करते हैं?' उसने कहा—''मैं एम० एस-सी० प्रथम वर्ष का छात्र हूँ। अभी पढ़ रहा हूँ।' इस बार उसके स्वर में घबराहट नहीं थी। प्राचार्या ने कहा—'आज तो आपका पेपर था, आप कैसे रुक गये?' उसने सहजता से उत्तर दिया—'मैं एक वर्ष फेल हो जाऊँगा, तो मेरा कुछ नहीं बिगड़ेगा, परन्तु लड़कियों के लिये एक वर्ष का समय बहुत होता है।'

टैक्सी आ गयी थी, मैंने आँसू भरी आँखों से प्राचार्या की ओर देखा। मेरी पीड़ा ने उन्हें कुछ सोचने का मौका नहीं दिया। उन्होंने जाने की आज्ञा दे दी। उसने सहारा देकर मुझे टैक्सी में बिठाया। घर तक हम दोनों चुपचाप ही रहे। घर आने पर वह मुझे नमस्ते कहकर चला गया, मुझसे धन्यवाद तक कहते नहीं बना। मन हुआ उसका नाम पता तो पूँछ लूँ, पर परम्परागत संस्कारों ने जबान पर ताला डाल दिया था।

इसके बाद मिलना नहीं हुआ। पर कभी-कभी दिल के किसी कोने में उसकी याद मुझे भीतर तक बेचैन कर देती थी। कहाँ होगा क्या वह सचमुच फेल हो गया होगा? मैंने नाम तक तो पूछा नहीं, कम से कम धन्यवाद तो देना था। वह ऐसे ही प्रश्न मेरे हृदय में उठा करते थे, किन्तु उन प्रश्नों का उत्तर देने वाला कोई नहीं था।

मेरा रिजल्ट निकला। मेरिट लिस्ट में मेरा तीसरा स्थान था। कालेज में हम सब पास होने की खुशियाँ मना रहे थे। खूब धूम-धड़ाके से शोर करते

हुए हम सब कालेज के प्रांगण में एक दूसरे से गले मिल रहे थे, नाच रहे थे, गा रहे थे, उछल रहे थे, कूद रहे थे। उमंगें जैसे थमना ही नहीं चाह रही थीं। भावनाएँ पंख लगाकर सातवें आसमान पर उड़ी जा रही थीं, वैसी खुशी आज तक मेरे जीवन में फिर नहीं आई। हम सब अपने-अपने घरों के लिए बाहर निकले, तो देखा कि कालेज के दरवाजे पर वही युवक खड़ा था। चेहरे पर लाल गुलाल पुता होने के बाद भी मेरा रंग उसको देखते ही लालसुर्ख हो उठा। लाज से हिचकिचाती हुई मैंने उसे नमस्ते किया, वह साइकिल पकड़े वहीं खड़ा था। हाथ जोड़कर मुस्कुराते हुए पूछा, ''कैसी हैं आप?'' मैंने मुस्करा कर सर हिला दिया—''अच्छी हूँ।'' उसके बात को आगे बढ़ाने चाहा 'मेरे कारण आपका प्रथम स्थान चला गया।' मैं कुछ नहीं बोली, चुपचाप आगे बढ़ती गई। वह भी मेरे साथ हो गया। मन बल्लियों उछल रहा था।

बड़ी कोशिशों के बाद मेरे मुँह से दो शब्द निकले—'आपका रिजल्ट कैसा रहा?' वह हंस पड़ा—'फेल होना मेरे लिए कोई नयी बात नहीं है। मैं आप की तरह मेधावी छात्रों में से नहीं हूँ। फिर उसके बाद परीक्षा देने की कोशिश ही नहीं की।' थोड़ी देर हम दोनों ही चुप रहे। फिर वही धीरे से बोला-'पढ़ने में मन ही नहीं लगा, बार-बार आपकी ही याद आती रही। हर समय वह झील-सी आखें, सुर्ख चेहरा ही सामने दिखता था। कई बार आपके दरवाजे तक आ-आकर लौट गया। आपको एक बार देखने की इच्छा के भूत ने मुझे पढ़ने ही नहीं दिया। फिर मैं बाहर चला गया, वहाँ से कल ही लौटा हूँ। आपका रिजल्ट देखकर बधाई देने चला आया।' उसके सीधे-सीधे बात मुझे बार-बार रोमांचित कर जाते थे। पूछ बैठी—'वह भूत उतरा कि नहीं!' 'कौन?' वह जैसे चौंक-सा पड़ा, फिर हंसते हुए बोला–'अच्छा वो। हाँ! बाहर जाकर कार्य में व्यस्त हो गया, तो सब भूल गया। इस वर्ष परीक्षा देने का इरादा है। साथ ही आप की तरह मेरिट में आने का भी। देखिए कहाँ तक सफल होता हूँ।' मैं फिर चुप हो गयी। मन ही मन उसके भूत उतरने की बात पर बुरा भी लगा। थोड़ी देर बाद उसने ही पूछा—'आप आगे पढ़ेंगी कि नहीं?' मैंने कहा—'मैं क्या बता सकती हूँ, जैसा मेरे मां-बाप चाहेंगे, वैसा ही करूंगी। पर अपनी तरफ से तो मैं आगे पढ़ना चाहती हूँ।' बात वहीं समाप्त हो गयी।

मेरा रिक्शा वाला आ गया था, मैंने उसके हाथ जोड़े और रिक्शा चल दिया। थोड़ी दूर जाने के बाद मैंने मुड़कर देखा, वह मेरी ही ओर देख रहा था। मैंने झट से अपना मुंह घुमा लिया। हृदय में न जाने कैसा धुक-धुक सा हो रहा था। किसी अपरिचित से बात करने का यह पहला अवसर था। झूठ

नहीं बोलूंगी, मेरे हृदय में उसको पाने की आकांक्षा तीव्र हो उठी थी। मन करता था, वह बातें करता रहे, मैं सुनती रहूँ। वह भूत जो उस पर सवार था, मुझ पर चढ़ गया था।

मैं खोई-खोई सी रहने लगी। किसी काम में मन ही नहीं लगता था, पर अपनी बेबशी किसी से कह भी नहीं सकती थी। समाज का बन्धन, परिवार का प्रतिबन्ध उस समय जहर के समान लगते थे। मैंने एक दिन मां से कहा, मुझे आगे पढ़ना है।' 'मां ने कहा—'क्या करेगी बहुत पढ़कर, तुझे नौकरी थोड़ी ही न करनी है। बस इसी महीने तेरा विवाह करना है।' मैं चाहकर भी प्रतिवाद नहीं कर सकी। शायद हर भारतीय नारी की उमंगों की परिणिति यही होती है। एक ठंडी सांस भरकर मैंने परिस्थिति से समझौता करना चाहा, पर मन नहीं मानता था। उसको देखने की इच्छा कम नहीं होती थी। मैं एक दिन चुपके से कालेज भी गयी, शायद वह मिल जाय, पर वह कहीं नहीं मिला। मैं अपने को ही कोसने लगी, मैंने उसका पता क्यों नहीं पूछा? परन्तु अब क्या हो सकता था, मन मसोस कर रह गया।

एक महीने बाद मेरे पैरों में जंजीरें बाँध दी गयीं। मुझे जिनके हाथों में सौंपा गया, वे अपने नगर के धनी-मानी प्रतिष्ठित व्यक्तियों में से एक थे। शहर में उनका बड़ा रुतबा था। मां कहती थीं, रानी ने सोने के गौर पूजे होंगे तब तो इतना सुन्दर घर-वर मिला। उनको क्या मालूम था कि मैंने सोने की गौर पूजी थी अथवा पत्थर के देवता पूजे थे। उन्हें तो मेरे हाथ पीले करने थे, सो हो गये। मैं कैसे रहूँगी, कैसे लोग होंगे, इसकी उन्हें जरा भी चिन्ता नहीं थी। वास्तव में नारी का जीवन एक जुआ ही तो है। अच्छा घर-वर मिल गया तो ठीक है, वरना जीवन समस्याओं का ढेर बन जाता है।

मेरे और मेरे पति के विचारों में जमीन-आसमान का अन्तर था। मैं स्वभाव से भीरु थी। संस्कारों में पली हुई। मंदिर, भगवान, साधू, संतों में मेरा अटल विश्वास था। मेरे पति को ईश्वर के नाम से चिढ़ थी। विवाह के साल दो साल तो नयी शादी के कारण वे कुछ नहीं बोले, पर बाद में उन्हें मेरा पूजा-पाठ, मंदिर सेवा आदि से चिढ़ होने लगी। घर के लोग तो मुझसे प्रसन्न रहते थे, किन्तु उन्हें भी मंदिर तथा भगवान में आस्था से चिढ़ थी। इसके लिए जब-तब मुझको ताने भी कुछ सुनने पड़ते थे, पर मैं चुप रह जाती थी। ईश्वर की राह में मीराबाई मेरी गुरु थी। उसने कितना कष्ट नहीं सहा, मैं यदि थोड़ा-सा भी सह लूंगी तो कोई हानि नहीं हो जायगी। मैंने अपना नियम नहीं छोड़ा। इस बीच ईश्वर की कृपा से एक पुत्र भी मेरे परिवार में आ गया था, उससे खेल कर मैं अपना जी बहला लेती थी।

अकस्मात् एक दिन मुझे खबर मिली कि मेरे धर्मगुरु इसी शहर में आए हैं। मेरी खुशी का पारावार न रहा। मेरे गुरु परमहंस हो चुके थे, उनको देखते ही मन में श्रद्धा और विश्वास की लहरें हिलोरें लेने लगती थी। मैंने अपने पति से कहा—'चलिए, गुरूजी आए हैं, उनके दर्शन कर लें। उन्होंने बुरा सा मुंह बनाकर कहा—मैं नहीं पड़ता इन लुच्चे, लफंगों के फेर में और तुम्हें भी मैं साधू संतों के फेर में नहीं जाने दूंगा। अगर तुमने मेरा कहना न माना, तो मुझसे बुरा कोई न होगा।' मैंने अनुनय-विनय करते हुए कहा—वे मेरे पिता के समान पूज्य हैं। मुझे गोद में खिलाया है, उनके लिए आप ऐसे शब्द न कहें। आप एक बार चल कर तो देखें। उनसे मिलने पर साधू-संतों के प्रति आपकी धारणा बदल जाएगी।' बहुत कोशिश करने पर हजारों चिरौरियों के बाद उन्होंने मेरे साथ जाना स्वीकार किया। हम दोनों फल फूल लेकर गुरूजी के स्थान पर पहुँचे। मैंने नतमस्तक हो गुरूजी के चरणों में अपना सिर झुका दिया। गुरूजी ने बड़े प्रेम भरी दृष्टि से देखते हुए पूछा—'अच्छी तो हो।' और मैंने सर हिलाते हुए कहा—'सब आप की कृपा है।' पता नहीं क्यों मेरे पति को यह सब जरा भी अच्छा नहीं लगा। उन्होंने न तो गुरुजी को प्रणाम किया, न अभिवादन। बस पूरे समय लाल-लाल आँखों से उनकी ओर घूरते ही रहे।

उनकी भयानक मुद्रा देख कर मेरा मन भी भीतर ही भीतर बेचैन हो उठा। मैंने गुरूजी से आज्ञा लेते हुए कहा—'घर में छोटा बच्चा है, इसलिए आज्ञा दें।' गुरूजी ने बड़े प्रेम से मेरे सर पर हाथ फेरते हुए कहा—'अच्छा फिर आना।' हम दोनों वापस आ गए। उनकी मुख मुद्रा देखकर मैं भयभीत हो गयी। किसी अनिष्ठ की आशंका से मन बेचैन हो उठा। पर उस दिन वे मुझसे कुछ नहीं बोले। दूसरे दिन जब मैंने गुरूजी के दर्शन करने के लिए कहा, तो उनका दबा हुआ क्रोध तूफान की तरह बरस पड़ा। एक थप्पड़ मारते हुए कहा—'तू उस मक्कार गुरु से जितना प्रेम करती है, उसका एक पसंग भी मुझसे क्यों नहीं करती? तू शुरू से ही उससे फंसी रही, इसलिए तुझे कभी यहाँ अच्छा नहीं लगा। खबरदार जो आज से कभी उस मुस्तण्डे के सामने गई?' और भद्दी सी गाली देते हुए उन्होंने मेरे मुँह पर थूक दिया।

यह पहला अवसर था, जब उन्होंने मुझ पर हाथ उठाया था। अपमान और क्रोध से मैं तिलमिला उठी। आँख से आँसू बरसने लगे। चोट खाई हुई नागिन की तरह मैं अपमान की ज्वाला में जलती मन ही मन उनको त्यागने को संकल्प कर बैठी। मैं पढ़ी-लिखी थी, अपने पैरों पर खड़ी हो सकती थी। इतना अपमान सहन करने के बाद उस घर में रहना असंभव था। मैंने सूट-

केस उठाया और अपने कपड़े रखने लगी। तभी छोटा मुन्ना रो उठा। उसे देखकर मन को एक झटका सा लगा। समाज, घर, परिवार का ख्याल आया।

समाज की पहनाई हुई जंजीरें बहुत मजबूत थीं। मेरे जाने के बाद इस बच्चे का क्या होगा? छोटे से एक वर्ष के पुत्र की ओर देखकर मेरी आँखों से आँसू गिरने लगे। उन आँसुओं की बाढ़ में अपमान की ज्वाला, तिरस्कार का क्रोध, गृह-त्याग का संकल्प सब बह गए। मैं घर न छोड़ सकी।

वहीं जी रही थी, पर वह जीवन मुर्दे के समान था। उमंगें महकना भूल गयी थीं, अब उसका स्थान ममता ने ले लिया था। मिमियाती हुयी ममता मुझे बांध रखने में सफल सिद्ध हुई थी। कलंकिनी कहलाने की अपेक्षा पति-व्रता होने में ही अपना हित नजर आता था। इसी तरह जीवन के ५० वर्ष बीत गये। दो बच्चे और हुए। मैं जीवित थी, लेकिन तिल-तिल कर मरने की रस्म पूरी कर रही थी।

कभी-कभी अकेले में अपने उस साथी की याद आ जाती। काश वह विवाह के पूर्व एक बार मिला होता, तो मैं इस पत्थर दिल के साथ कभी न बंधती। उसकी याद आते ही मन का आंगन मौसम बे मौसम सारी जंजीरों को तोड़कर भागने को करता रहता। दिल ऊबने पर मायके चली जाती थी। इस बार मायके में अचानक एक दिन उससे भेंट हो गयी। भेंट क्या हुई मन का गुबार बरबस फूट पड़ा। अनजाने ही मैं उस पर बरस पड़ी—'आप तो ऐसे गायब हुए कि फिर खोज-खबर ही नहीं ली।' वह हक्का बक्का सा बुझी-बुझी आँखों से देर तक मेरी ओर देखता रहा।' फिर उत्तर दिया—'छुट्टियों में मैं बाहर चला गया था, लौटकर आया तो पता चला कि आपका विवाह हो गया है। आप क्या जाने, मेरे ऊपर क्या बीती। न जाने कब से मैंने अपने हृदय में आपकी तस्वीर लगा रखी थी, वह गिर कर चूर-चूर हो गयी। मैंने अपना वचन निभाया और मैरिट में आ गया था। पर मेरे लिए वह खुशी खुशी नहीं थी। एक मंजिल मिली थी, तो जिन्दगी की मंजिल खो बैठा था। तब से अब तक मैं आपको ही ढूंढता फिर रहा हूँ। आपके समान दूसरा कोई मिला नहीं, इसलिए विवाह भी नहीं किया। विवाह मेरे भाग्य में ही नहीं है।' कहते हुए वह झूठी हंसी हंस पड़ा।

मेरी आँखों से गंगा-यमुना की तरह पानी रिस-रिस कर बहता जा रहा था। हम दोनों ही नियति के हाथों मारे गए थे। मैं अचानक ही उसके हृदय से लगकर फफक उठी—'मैं कितना नर्क भोग रही हूँ, तुमको नहीं मालूम। हाय, मैं मर क्यों नहीं जाती?' और रोते-रोते मैंने अपनी दुर्दशा की कथा उसे सुना डाली। मेरे मन का बोझ तो कुछ हल्का हुआ, पर वह छटपटा उठा—

'आप पढ़ी-लिखी हैं, परिस्थितियों को स्वीकार कर लेना ही जीवन नहीं है। आज के युग में कोई अपनी पत्नी पर इतना अत्याचार करे और वह सहती रहे, यह पाप है। जघन्य पाप है। आप केवल अपने पर नहीं, सम्पूर्ण नारी जाति पर अत्याचार कर रही हैं। आप उस बर्बर का साथ छोड़ दें। आप चाहें तो अब भी स्वतंत्र हो सकती हैं, मैं तो आज भी आपको उसी तरह चाहता हूँ, जैसे पहले चाहता था और सांस की अंतिम कड़ी तक आपके सिवा मेरे जीवन में दूसरा अन्य नहीं आएगा, यह आप अच्छी तरह जानती हैं।'

समाज की बेड़ियां तोड़ना इतना आसान नहीं है, विद्रोह की चाह होते हुए भी मजबूरियां आड़े आती हैं। हमारे समाज की व्यवस्था में कितने ऐसे रोड़े हैं जो मन की उमंगों को दबा-दबा कर रख देते हैं। यहाँ सीधी और साफ आत्मीय पगडंडिया नहीं है, बातूनी गलियां भरी हैं। मेरा बाहर निकलना मेरे स्वार्थ में भले ही हितकर हो, पर दो परिवारों के लिए अहितकर होगा। मैंने अपनी स्थिति को मजबूरी मानकर ज्यों का त्यों स्वीकार कर लिया। सारे प्रलोभनों को एक तरफ रख कर मैं अपनी नारकीय जिंदगी में ही खुश रहने की चेष्टा करने लगी। ऐसा कोई दिन नहीं जाता था, जब मेरे पति मुझ पर बरसते न हों, पर परिणाम उल्टा ही होता गया। ज्यों-ज्यों वह मुझे त्रास देते थे, त्यों-त्यों मैं ईश्वर के चरणों में अधिक झुकती गयी।

मेरी दुर्दशा वा उसके कारणों से गुरुजी परिचित थे। वह फिर मेरे नगर में नहीं आए। धीरे-धीरे युग बीत गया। बच्चे बड़े हो गए। मन में एक आशा थी, बच्चे तो मेरा साथ देंगे ही। शायद इनकी छत्र-छाया में मुझे भूली हुई खुशियां प्राप्त हो जाएँ। अचानक एक दिन पुनः गुरुजी उसी नगर में आए। मैं डाक्टर के घर जाने का बहाना बनाकर गुरुजी से मिलने के लिए चली गयी। वहाँ पर सत्संग चल रहा था, मैं बैठ गयी। मुद्दतों बाद गुरुजी की वाणी सुनने का लोभ संवरण नहीं कर सकी और घर लौटने में देर हो गयी। पति और पुत्र दोनों ही तिलमिलाए हुए मानों मेरा ही इंतजार कर रहे थे। उन्हें पता चल गया था कि मैं कहाँ गई थी। आते ही मुझ पर कोड़ों की मार पड़ना शुरू हुई और जब तक मैं बेहोश नहीं हो गयी, तब तक वे मारते रहे। जब मुझे होश आया, रात काफी हो चुकी थी। मैंने उठने की चेष्टा की, तो पीठ में बेहद दर्द मालूम हुआ, मैं पुनः बेहोश होकर गिर पड़ी।

सुबह पति ने डाक्टर को बुलाया तो उसने कहा—'इनकी पीठ में काफी चोट आ गयी है, प्लास्टर चढ़ेगा। यह चोट लगी कैसे?' मेरे पति और पुत्र सकपका गए। मैंने कह दिया—'मैं सीढ़ी से गिर पड़ी थी।' तीन महीने मैं अस्पताल में रही। मेरी चोट अच्छी हो गयी थी, पर मन बेहद टूट चुका

था। पति के हाथों की मार तो प्रति दिन सहती थी, उसका मलाल नहीं था। पुत्र के हाथों की मार खाकर सारे सपने धाराशायी हो गए थे। सभी मर्द एक जैसे होते हैं। चाहे वह पुत्र हो अथवा पति। मन ही मन संकल्प कर लिया था कि अब उस घर में नहीं जाऊँगी।

पूरी पीठ में एक राड हमेश बांधनी पड़ेगी, ऐसा कहकर डाक्टर ने विदा कर दिया। मैं अस्पताल से घर नहीं आई। सीधे गुरुजी के आश्रम में आ गयी। एक पत्र अपने पलंग पर रख आई थी—मुझे ढूंढ़ने की कोशिश नहीं करना, मैं जहां भी रहूँगी, तुम्हारे घर से ज्यादा खुश रहूँगी। गुरुजी ने मेरी सारी कथा सुनी और बड़े प्यार से मुझे अपने आश्रम में रहने को स्थान दे दिया।

आश्रम में मेरे जैसी अनेक महिलाएँ थीं। यहाँ खुशियाँ ही खुशियाँ थीं। मेरे सारे दु ख इन खुशियों की बाढ़ मे बह गए थे। स्वतंत्रता की हवा ने मेरी दुखती रगों पर मरहम का काम किया था। धीरे-धीरे मेरा दर्द कम होने लगा। शरीर के घाव के निशान भी कम होने लगे। तभी एक दिन मेरे पति और पुत्र गुरुजी के आश्रम में आ धमके। उन्होंने गुरुजी को गालियां देना शुरू किया और मुझे घर ले जाने के लिए कोशिश करने लगे, परन्तु मैं अपने निर्णय पर अटल थी। गुरुजी का सरकार में अच्छा प्रभाव था। उन्होंने पुलिस को बुलाकर मुझे उन राक्षसों से छुटकारा दिलवा दिया। अन्त में जेल के भय से मेरे पति चुप हो गए, पर पुत्र नहीं माना। उसने चलते-चलते कहा—'तुम मरना चाहती हो, तो घर चलो। वहाँ मैं तुमको जहर लाकर दे दूंगा, लेकिन इज्जत से तो मरो। हम लोगों की इज्जत मिट्टी में मिलाकर यहाँ रहने से तुम्हें क्या मिलेगा?' मैंने उत्तर दिया—'तुम्हारी इज्जत तो उसी दिन मिट्टी में मिल गयी थी, जिस दिन तुमने मुझ पर हाथ उठाया था। केवल तुम्हारे कारण, तुम्हारे सुख के लिए मैंने २५ वर्ष तक का नारकीय जीवन भोगा। मेरे 'बच्चे अनाथ नहीं हो जायें, इसलिए पति की हर मार को मैं सहती रही, परन्तु बदले में तुमने मुझे क्या दिया? मुझ निर्दोष पर हाथ उठाया? क्या तुम्हें भी मैं कुलटा ही लगती हूं? और यदि कुलटा भी होती, तो भी तेरा क्या कसूर किया था मैंने? मुन्ना, तूने अपनी माँ पर हाथ उठाया है, तू कभी सुखी नहीं रहेगा, यह याद रखना!' और मैं मुंह फेरकर भाग गई। पुत्र सर झुकाए चला गया। आश्रम के तमाम लोगों की घृणा भरी निगाहों को वह पिता-पुत्र नहीं सह सके। उन्हें अपनी गलती का अहसास तो हुआ था, पर का वर्षा जब कृषि सुखाने।

मेरे मन में न पुत्र का मोह था न पतिव्रता होने की चाहना थी। जिस घटना का पटाक्षेप हो चुका था उस पर परदा पड़ा रहे यही मेरे लिए सुखद था। समाज की वह जंजीर जो मुझे जबर्दस्ती पहनाई गयी थी मैंने स्वेच्छा से तोड़ दी थी।

—जीवन कालोनी, बल्देव बाग, जबलपुर

अंधियारे की बाती

—डॉ० कृष्णकुमार हूंका।

बात मुतके दिना की हो गई। जब टिप्पे कक्का कछू सियाने होन लगे हते सो उनकी नजर सोई कछू-कछू ऊँची हो गइ ती। ऐसे बे संझा-सबेरे एक पतरी-सी लठिया लैकें घूमबे जान लगे हते। एक दिना कछू ऐसो भओ कै टिप्पे कक्का जब संझा खों ब घूमबे जा रये ते तो एक जगां घर के बायरें के दासे पे भइयन-भइयन में जड़-जमीन खों लौकें दन्द हो रओ तो। टिप्पे कक्का खों का मतलब। वे तो अपनी गैल सूदे चले जा रये ते। इत्ते में पाछें से आवाज आई—टिप्पे कक्का....टिप्पे कक्का....। टिप्पे कक्का आवाज सुनकें पाछें मुड़े तो नजर में आई कै बेई लरनबारे भइया बुला रये हैं। टिप्पे कक्का ने सोची कै जब बुलाई रये हैं तो जाबे में कौन हरज है। ऐसी सोच विचार कें बे उन भइयन के लिंघा जा पोंचे। सबई भइयन नें उन्हें खूबइ इज्जत दैकें उनें बोरा पै बैठारो और सबई नें बिनती करी कै हमाव दन्द निपटा देव। ई सुनकें कक्का जू बोले—बात काआय हो गई। ई पे सबई भइयन नें अपनी अपनी बात पारी-पारी सें दै सुनाई। सब भइयन की बातें सुनकें टिप्पे कक्का नें कई—'तुम लोग हमाई बात तो मानहो ना। ईसें कछु कैबो फिजूल है।' 'सब भइया हाँत जोड़ कें बोले–नईं कक्का ऐसी बात होती तो तुमें बुलाते कायेखों। आप जो न्याव की बात बोल दैहो बो हम सबै कबूल हैं। कक्का नें कई जा बात तो ठीक है, पे तुम लोगन के मन में खटाई पर गई है, ईसें पिरेम सें न्याव करकें अपनी-अपनी हींसा बांट लेव और सुखी सें रव। पै हमाव तजुरबा जो है कै जब लों मुठ्ठी बँधी रैहै तौलों छोटे-बड़े को रूप सब ढको रैत और जब वा खुल जात है तो ताकत तीन तेरा पांच अठारा सोइ हो जात, ऊपर सें जग हंसाई अलग। इसें सब जनें मन को मैल धो-पोंछ कें और तनक-तनक गम खाकें संगै-सात रव, ऐई में सब भइयन की भलाई है।

सब भइया टिप्पे कक्का को फैसला सुनकें उनके चरनन में जा गिरे और कैन लगे—आपनें तो मरम की बात करकें हम भइयन खों अंधियारे की बाती दिखा दई।

—१६२ कोतवाली वार्ड, जबलपुर

बुन्देली दोहे

चुरियन सों बतयाय

● राजकुमार 'सुमित्र'

नें कछु नें कछु कैत गइ, बाँके नैन झुलैत।
कछु को कछु हो जात है, कछु कछुआ सो रैत॥
न्योता दै रइ चँदनिया, आकें करो नहान।
गोरी सें गोरी भयी, जानत सकल जहान॥

●

हांतन की सोभा गजब, उँगरिन झरै अँजोर।
सुपयारे कारे परैं, नो देबैं झकझोर॥
आवत जावत देखकें, नैनन सों मुसकाय।
सुनें नें बोली बानगी, चुरियन सों बतयाय॥

●

का करहों मैं रूठ कें, आंग उपत हुलयास।
बड़े दिना में मिले सो, टूटो लाज-उपास॥
चौका-बासन कर लली, चली भली कर-पोंछ।
मुख-चंदा पै लग परी, एक रेख कालौंछ॥

●

पगतल, करतल होत जब, ऐसो परत गुमान।
जैसें पीपर पात पै दं, गइ ओस निसान॥
काजर आदर पा गओ भओ भाल सिंगार।
मन मुतियन सो डुल रहो, कब सें रही निहार॥

●

मूरख मालक के लिघा, दुखी रहत द्विजराज।
जुनरी मका मसूर में, मिला दओ दुबराज॥
नार नसैनी एक सी, ऊपर लौं लै जाय।
भूल चूक रपटै कऊँ, घूरम-घूर कराय॥

●

नारि-नसौंही जो कहै, वाको जनम नसाय।
टपको रओ अकास सें—महतारी सें नाय॥
नींचन बीचन जो परै, कहा करै बुधिमान।
जैसे बीच किमाच के, बिकल होय बलवान॥

●

—११२ सराफा, जबलपुर

सपनों के फुरं भये सुअना

● ओंकार तिवारी

मैना जा बोल रई अँगना
नै आई पुनों लों सजना।
बसंत नें भेज दई है सेना
काटे कटं नई जा रैना
ढुरका रये अंसुआ जे नैना
मुसुकावै आपइ सें ऐना
बैरी से लग रये है गहना
मैना जा बोल रई अँगना।

●

बलमा परसन में उरझे
सोतनिया लावे वे बिरझे
जुबना के नै जराव दियना
होंतन के नै बजाव कँगना
अँखियन में नै अंजाव अंजना
मैना जा बोल रई अंगना।

●

अपनी तो किसमत में तपना
पाँवों मे बिरहा को संधना
बिधना नें कौन रची रचना
बोंबो भओ नदिया को बंधना
सपनो के फुरं भये सुअना
मैना जा बोल रई अँगना।

●

बिसरो अमरैया की छैयां
खेली ती डारें गलबैयां
सुदियों के नै झुलाव झूलना
गालों में नैं गुदाव गुदना
चुटिया में नै गुहाव फुंदना
मैना जा बोल रई अँगना।

●

—सहायक संपादक, नवीन दुनिया, जबलपुर

बुन्देला विद्रोह—१८४१-४३ई०

● डा० काशीप्रसाद त्रिपाठी

[बुन्देला विद्रोह बुन्देलखण्ड के इतिहास की महत्वपूर्ण घटना है, क्योंकि उसमें १८५७ ई० के स्वतन्त्रता-आंदोलन के बीज छिपे हैं। इस शोधलेख में इतिहासकार डा० त्रिपाठी ने उसे सूक्ष्मता से खोजने का प्रयास किया है, किन्तु लेख के अंतिम चरण में शाहगढ़ के राजा बखतबली और बानपुर के राजा मर्दनसिंह जैसे क्रांतिकारियों का विद्रोहियों को उपस्थित कराने या पकड़वाने के लिए सक्रिय होना तथा जैतपुर के विद्रोही राजा पारीछत का समर्पण प्रचलित किंवदंतियों और जनश्रुतियों के अनुरूप नहीं है। प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथ—'पारीछत को कटक' में पारीछत और अंग्रेजों के युद्ध का वर्णन तो है, लेकिन पारीछत के समर्पण का संकेत नहीं है। प्राप्त प्रति अपूर्ण है। अतएव निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता। इतिहास के विद्वानों से अनुरोध है कि वे इस विषय पर अपने विचार प्रकट करें और सुधी पाठकों को भी आमंत्रण है।—सम्पादक]

राजद्रोह के प्रेरक तत्वों में पुरानी व्यवस्था एवं प्रथाओं में परिवर्तन, नये कर, विशेपाधिकारों की समाप्ति, सैनिक पुलिस दमन, एवं रूढ़िवादी, शोषणकारी, सामन्तवादी तथा दासता और दमन में विश्वास रखने वाले लोग जो नवीन परिवर्तनों के सर्वदा विरोधी होते आये हैं, रखे जा सकते हैं। उनकी आकस्मिक प्रतिक्रियायें, व्यथित हृदयों की कुंठायें और युगान्तर भावनायें विद्रोह अथवा विप्लव का रूप ग्रहण कर लेती हैं।

बुन्देलखण्ड में कम्पनी सरकार के प्रसार एवं गैर क्षेत्रीय मराठी सत्ता के संकुचन के कारण, स्वच्छन्दतापूर्वक अधिकारों एवं भूमिका उपभोग करने वाले सामन्तों के हितों पर आघात पहुँचा, जिस कारण वे सब अंग्रेजी व्यवस्था के प्रति आक्रोश प्रकट करने लगे थे तथा विदेशी शासन के प्रति घृणा की भावना को परिलक्षित कर अराजकता उत्पन्न करने लगे थे। क्रिया और प्रतिक्रिया के संघर्ष का नाम ही क्रान्ति है तथा यह संघर्ष प्रकृति एवं मानव समाज की विशेष निधि है, जो प्रगति का एक मार्ग है। इन्हीं भावनाओं के साथ बुन्देलखण्ड में, प्रशासनिक माध्यम से अनेक राजनैतिक एवं सामाजिक परिवर्तन

हुये। कालचक्र के राजनैतिक चक्रवात के साथ बुन्देलखण्ड में मराठी सत्ता एवं प्रभाव की स्थापना हुई थी। परन्तु उनकी परस्पर फूट आपसी विद्वेष एवं वैयक्तिक महत्वाकांक्षा की दुर्भावना के परिणाम स्वरूप, सन् १८०२ ई० में पेशवा बाजीराव द्वितीय ने अपना बुन्देलखण्डीय अधिराज्य, ६ बटेलियन सेना की सहायता प्राप्त करने के निमित्त कम्पनी सरकार को समर्पित कर दिया था।[1]

समर्पित भूमि के अधिग्रहण करने पर, बुन्देलखण्ड के स्थानीय राजाओं ने मराठों की लूट, दमन एवं शोषण से विमुक्ति प्राप्त करने हेतु कम्पनी सर-कार से सुरक्षात्मक समझौते कर लिये थे और अपने अधिकारों तथा सार्व-भौमिकता को समर्पित कर, उसकी अधीनता ग्रहण कर ली थी। कम्पनी सरकार तो स्थानीय राजाओं का सहयोग चाहती ही थी, क्योंकि बिना उनके सहयोग के मराठी प्रभाव नष्ट नहीं हो सकता था तथा मराठी प्रभाव के विनष्ट किये बिना, कम्पनी सरकार की सत्ता की स्थापना होना कठिन था। इसीलिये कम्पनी सरकार ने परिस्थितियों के अनुरूप, स्थानीय राजाओं को १८०३ से १८२३ ई० के मध्य सुरक्षा का वचन देकर, उनकी यथास्थिति बनाये रखने के इकरार के साथ उन्हें सनदें दीं, अपना सहयोगी और मित्र बना कर, मराठों के प्रभाव को समाप्त करने का मार्ग निष्कंटक एवं स्पष्ट कर लिया था।[2]

सन् १८१३ के पश्चात् लार्ड हैस्टिंग्ज ने अपनी 'अधीनस्थ पृथक्करण और अधीनस्थ सहयोग' की नीति के माध्यम से राजाओं को नजर कैद सा कर लिया और परिवर्तित परिस्थितियों के अनुरूप कम्पनी सरकार ने सुरक्षा करने के साथ ही अधीनस्थ सहयोग लेना प्रारंभ कर दिया था। इसके साथ ही जो राजा 'अधीनस्थ सहयोग' के अन्तर्गत कम्पनी सेना की सहायता करने से इन्कार करते, तो उनके साथ शत्रुवत् व्यवहार किये जाने की चेतावनी दी गई थी। स्पष्ट रूप से यह नीति मराठों के दमन एवं उनके राज्य छीनने की कपटपूर्ण योजना थी। इस नीति का आश्रय लेकर मराठों से सागर, धामोनी एवं गढ़ाकोटा छीन कर कम्पनी सरकार ने 'सागर नर्मदा टैरीटरीज प्रान्त' निर्माण कर अपनी शासन व्यवस्था स्थापित कर ली थी।

---

१. ली वार्नर—द नेटिव स्टेट्स आफ इंडिया, पृ० ७६, सैकिन्ड ऐडीसन १६१० ई०।

२. रिपोर्ट फ्रॉम सिलेक्ट कमेटी ऑन दि अफेयर्स ऑफ ईस्ट इंडिया कम्पनी, वाल्यूम ६, पौलिटिकल एन्ड फॉरैन, वर्ष १६३२।

इसी समय झांसी का मौंठ परगना और जालौन राज्य के ४८ ग्राम कम्पनी सरकार ने बलात् लेकर मराठों की प्रभुसत्ता पर चोट की थी। कम्पनी सरकार ने कठोर नियंत्रण बनाये रखने के लिये, प्रशासक पदों पर भी सेना के अधिकारियों को नियुक्त किया था। ऐसे ही संयुक्त पद पर काल्पी में कैप्टेन रैमजे पदस्थ थे। उनके कठोर नियंत्रण, दमन तथा नवीन व्यवस्थापन के नियमों से पूर्व की मराठा-शासित प्रजा भड़क उठी थी, जिसका लाभ सन् १८२४ में जालौन के मराठा राजा गोविन्द राव ने उठाया। उसने कम्पनी सरकार की व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह करवा कर काल्पी नगर को लूट कर उसकी आधी बस्ती में आग लगवा दी थी।[3] बुन्देलखंड में कम्पनी सरकार के विरुद्ध जन-असन्तोष की यह पहली झलक थी।

बुन्देलखंड के दक्षिणी भाग के 'सागर नर्मदा टैरीटरीज प्रान्त' में लार्ड विलियम बैन्टिक ने सन् १८३५ में २० वर्षीय भूमि प्रबन्ध करवाया था, जिसमें मराठा शासन काल की अपेक्षा ३ गुना लागत बढ़ा दिया गया था।[4] कृषक और भूमस्वामी पूर्व से ही गरीब तथा अर्थहीन थे, फिर ऊपर से इस बढ़े हुये लगान ने उनकी गरीबी में और बढ़त की। उनमें इस बात को लेकर असन्तोष उभरने लगा था कि कम्पनी सरकार की नीति कृषक विरोधी है। वे अपने को मराठों तथा स्थानीय राजा के शासनकाल से अधिक दुखी एवं पीड़ित मानने लगे थे। यद्यपि अंग्रेज अधिकारी भी इस कृषक-विरोधी व्यव-स्थापन को कठोर मानते थे, और सर जॉन माल्कम ने तो उक्त व्यवस्थापन से हुई आर्थिक गिरावट की निंदा हाउस ऑफ कामंस को सिलैक्ट कमैटी लंदन तक पहुँचाई थी,[5] परन्तु कोई परिणाम न निकला था।

कम्पनी सरकार ने कृषकों से २० वर्षीय भूमि प्रबन्ध का बढ़ा हुआ लगान निर्ममता से वसूल कराया। अर्थ हीन गरीब कृषक जब पूरा लगान न चुका पाते थे, तब शासकीय कर्मचारी उनसे निष्ठुरता का अभद्र व्यवहार किया करते थे। उनके घर से कृषि उपज की सामग्री एवं अनाज सस्ती दर पर विक्रीत करा दिया जाता था। इससे कृषक कृषि धंधे से उदासीन होने लगे

---

३. हिस्ट्री एन्ड कल्चर ऑफ इंडियन पीपुल, वालूम ६, पृ० ४४१।

४. जयचंद विद्यालंकार-भारतीय इतिहास का दिग्दर्शन पृ० ४७५, इं० ग० वालूम २२, पृ० १४५।

५. रमेश दत्त-इकॉनिमिक्स हिस्ट्री आफ इण्डिया, वालूम १, पृ० २६७-६८।

घरेलू आवश्यक खर्चों के कारण

थे ।[6] कृषि फसलों के नष्ट होने अथवा अन्य घरेलू आवश्यक खर्चों के कारण जब कृषक पूरा लगान चुका पाने में असमर्थ हो जाते और बकाया बढ़ जाती, तब कृषकों पर अदालती कार्यवाही कर दी जाती थी और कुर्की के द्वारा वसूली कर ली जाती थी । अदालती कार्यवाही एवं कुर्की कराने में लोगों की सामाजिक प्रतिष्ठा का कोई ध्यान न रखा जाता था तथा संभ्रान्त कोटि के जमींदारों एवं मालगुजारों के लगान चुकता न कर पाने पर उन्हें भी उनकी प्रजा अथवा गाँव वालों के समक्ष अपमानित किया जाने लगा था । इससे कृषक, मजदूर और संभ्रान्त मालगुजार जैसे लोग कम्पनी सरकार की रीति-नीति से असंतुष्ट हो गये थे ।[7]

सागर नर्मदा टैरीटरीज के संभ्रान्त वर्ग में बुन्देला, लोधी और गोंड़ जाति के जागीरदार जमींदार एवं मालगुजार जैसे बड़े भूमि स्वामी थे ।' जो मराठा शासकों के युग से बिना लगान दिये अपनी अधिकृत भूमि का स्वच्छंद तौर पर उपयोग करते आ रहे थे । परन्तु कम्पनी सरकार ने प्रमाणों के अभाव में उनकी जमींदारी समाप्त कर, नवीन व्यवस्थापन के अन्तर्गत लगान स्थापित कर दिया था । यह कार्य उनकी स्वच्छंद प्रवृत्ति के प्रतिकूल हो गया था, क्योंकि उन्होंने कभी किसी को लगान दिया ही न था । इसी कारण उन्होंने कम्पनी सरकार को भी लगान देने में उदासीनता दिखलाई । परन्तु कम्पनी सरकार ने उनके लगान न चुकता करने पर कठोर कार्यवाही की, जिसे उन्होंने अनुचित मानते हुये अपने अपमान के रूप मे लिया । इस नवीन व्यवस्थापन का विरोध करने वालों में नाराट के मधुकर शाह बुन्देला, चंद्रपुर के जवाहर सिंह बुन्देला, गुड़ा के गणेश जू बुन्देला, हीरापुर के हृदयशाह लोधी एवं मदनपुर (नरसिंहपुर) के डिलनशाह गोंड़ जागीरदार प्रथम पंक्ति के प्रमुख अग्रणी थे ।

लगान चुकता न करने पर सागर के सिविल न्यायालय द्वारा नाराट के मधुकरशाह बुन्देला के विरुद्ध कुर्की के आदेश जारी कर दिये गये तथा ज्यों ही कुछ सिपाही वारंट लेकर नाराट पहुँचे, तो मधुकर शाह ने इसे अपनी सामन्ती प्रतिष्ठा के प्रति अपमानजनक कदम ठहराया । वह अपनी सामन्ती प्रतिष्ठा के अनुरूप कम्पनी सरकार के सिपाहियों से बिगड़ उठे और उन्हें अपनी गढ़ी में बंद कर खूब पीटा, जिनमें जालिमसिंह, हीरासिंह और विजय बहादुर तीन सिपाही तो मारे गये थे शेष किसी प्रकार प्राणों की रक्षा करते हुये भाग

६. डेस्पैच फ्रॉम कोर्ट आफ डायरैक्टर टू गवर्नर जनरल एट बँगाल, १८२८, एपेंडिक्स २३, पृ० ३३५ ।

७. इं० ग० आफ इंडिया, वालूम १०, पृ० १७, जबलपुर डि० ग० पृ० ६५ ।

गये थे ।[8]

वास्तव में मधुकरशाह बुन्देला बानपुर राजवंशीय नाराट के जागीरदार थे । उन्हें कम्पनी सरकार की सामन्ती अधिकारों पर चोट करने वाली नीति पसंद न थी । फिर उनकी विरोधी भावनाओं को उद्दीप्त करने में कम्पनी सरकार के निरंकुश सैनिकों एवं आरक्षकों ने जले पर नमक छिड़कने जैसा कार्य किया । मधुकरशाह बुन्देला एक नाचने वाली स्त्री (बेड़नी) को रखैल रखे थे । सन् १८४१ की होली के अवसर पर नाराट के आरक्षी केन्द्र के अंग्रेजी सैनिकों को राई नृत्य हेतु जब कहीं नाचने वाली बेड़नी उपलब्ध न हो सकी, तो मधुकरशाह की रखैल को उसके घर से बलात् पकड़ कर ले गये थे । इससे मधुकरशाह उत्तेजित हो उठे । वह आरक्षी केन्द्र में गये । वहाँ आरक्षकों को पीटा तथा आरक्षी भवन में आग लगा कर अंग्रेजी व्यवस्था के विरोध का शंखनाद किया ।[9]

मधुकरशाह बुन्देला का समर्थन सागर क्षेत्र के ही जवाहरसिंह बुन्देला चंद्रापुर, गणेश जू बुन्देला गुड़ा तथा हृदयशाह लोधी हीरापुर ने विद्रोह करते हुये में सक्रिय भाग लिया था । यह सभी स्वच्छन्द और सामंती प्रवृत्ति के मालगुजार थे । मधुकरशाह बुन्देला के विद्रोह का समाचार जैसे ही नर्मदा क्षेत्र में फैला तो मदनपुर (नरसिंहपुर) का गोंड़ सामन्त डिलनशाह भी अपने क्षेत्र के असन्तुष्ट जमीदारों, ग्राम प्रधानों एवं भूस्वामियों को साथ लेकर विद्रोही हो गया था ।[10]

पूर्वोत्तर बुन्देखंड के हमीरपुर क्षेत्र के जैतपुर राज्य के पास कैया सदर में कम्पनी सरकार की सैनिक छावनी थी । उक्त छावनी जैतपुर के राजा पारीछत की स्वच्छन्दता पर एक अंकुश थी । इसके अतिरिक्त चरखारी गद्दी रतनसिंह को दिये जाने से पारीछत कम्पनी सरकार से असन्तुष्ट थे ।[11] सागर क्षेत्र में अंग्रेज विरोधी विद्रोह का अनुकरण करते हुये महाराजा पारीछत ने दिसम्बर, १८४१ ई० में कैथा छावनी में आग लगाकर कम्पनी सरकार के विरुद्ध विद्रोह कर दिया था ।[12]

८. पार्लियामेन्टरी पेपर, अप्रैल १८४४ ।

९. सागर डि० ग० १९०५, पृ० ८९, रायबहादुर हीरालाल-सागर सरोज पृ० ५५-५६ ।

१० जबलपुर डि० ग०, पृ० ६५, सन् १९०५ ।

११. आगारा पो० क० नं० १९, दि० २८ अक्टूबर १८३७, पार्लियामेन्ट्री पेपर १८५० ई० ।

१२. गोरेलाल तिवारी पृ० २९५, वि० प्र० का इतिहास पृ० ४१३ ।

संयोग की बात कि इसी समय पश्चिमोत्तर बुन्देलखंड में चिरगाँव के राव बखतसिंह ने भी कम्पनी सरकार की सेना की दमनात्मक नीति के विरोध में खुला युद्ध छेड़ दिया था। कारण कि झाँसी के अंग्रेजी सैनिकों ने अप्रैल, १८४१ में चिरगाँव क्षेत्रान्तर्गत कैम्प लगाया था। उसी समय अंग्रेजी सैनिकों ने आखेट के बहाने राव बखतसिंह की दो पालतू मोरों को मार कर खा लिया था। जब यह समाचार राव बखतसिंह को मिला, तो उन्होंने उत्तेजित होकर १५ अप्रैल, १८४१ को कुछ घुड़सवारों के साथ अंग्रेजी सेना के कैम्प पर आक्रमण कर दिया। कैप्टेन बर्नर जब तक सँभला कि तब तक राव साहब चिरगाँव दुर्ग में लौट गये तथा कम्पनी सरकार के साथ खुले युद्ध की तैयारी करते हुये महाराजा ओरछा एवं रीवा से सहायता की माँग की थी।[१३]

बुन्देला विद्रोह के उद्दीपन एवं विद्रोहियों के उत्साहवर्द्धन में काबुल से निराश लौटी अंग्रेजी सेना के १६५०० सैनिकों को काट दिये जाने का भी योगदान था। विद्रोही समझने लगे थे कि सेना के अभाव में कम्पनी सरकार का शासन ढीला हो गया है। होशंगाबाद के साहयक कैप्टेन वोलेंड का भी मत था कि काबुल की पराजय से विद्रोहियों का उत्साह बढ़ा है।[१४]

विद्रोहियों के हृदय में भूमि व्यवस्थापन एवं सैनिक प्रशासन की कठोरता से उत्तेजना तो थी ही, सिंधिया और भोंसले मराठा शासकों ने भी इसे तीव्र करने में योगदान दिया।[१५] गढ़ाकोटा और धामोनी क्रमशः सिंधिया और भोंसले के पूर्वकालिक क्षेत्र थे। जहाँ के मालगुजार अभी अपने विगत राजाओं के प्रति वफादारी रखते थे। झाँसी के गंगाधर राव भी राज्याधिकार न मिलने के कारण अधर में लटके अंग्रेजों से असन्तुष्ट थे तथा अंग्रेज विरोधियों से अधिक संपर्क एवं सहानुभूति रखा करते थे।[१६] इस बात की पुष्टि लार्ड ऐलेनबरो के सेक्रेट्री ने भी की थी।[१७]

इस प्रकार १८४१ से १८४३ ई० के मध्य बुन्देलखंड के दक्षिणी पश्चिमी एवं उत्तरी भागों में कम्पनी सरकार की सैनिक तानाशाही और प्रशासनिक

१३. कासिम अली सज्जनलाल-साइड लाइट ऑन आकलेंड फौरेन पोलिसी, पृ० ३५।

१४. डॉ० मजूमदार एण्ड राय चौधरी—ऐन एडवांस हिस्ट्री आफ इंडिया, पृ० ७५७।

१५. पार्लियामेन्ट्री पेपर (ग्वालियर) १२ मार्च १८४४, पैरा १६, पृ०११-१३।

१६. मिनिट आफ ऐवीडेंस १८५२।

१७. मध्य प्रदेश में स्वाधीनता आन्दोलन का इतिहास, पृ० ३६।

व्यवस्था के प्रति असंतोष प्रकट करते हुये, राजाओं, जागीरदारों एवं मालगुजारों ने विद्रोह कर कम्पनी शासन को उखाड़ फेंकने का प्रयत्न किया था। यह विशेष उल्लेखनीय बात है कि असन्तोष के बीज पूर्वकालिक मराठी भूभाग अथवा उनसे संबंधित राजाओं, जागीरदारों के क्षेत्रों में अंकुरित हुये थे।

राव बखतसिंह चिरगाँव के पुत्र सेनापति एवं छत्रसाल ने समीप के ग्रामों के प्रधानों को संगठित किया। इनमें पसराई के कर्णसिंह, चंदवारी के सुखसिंह के साथ रामनगर, करगुवाँ, पुरारा, महेवा, ओपारा, धमना, घुसगुवाँ और सुल्तानपुर के जमींदार प्रमुख थे, जो चिरगाँव दुर्ग की रक्षार्थ जत्थे के जत्थे भेज रहे थे। १७ अप्रैल, १८४२ को अंग्रेजी सेना ने चिरगाँव पर तोपें दागीं। २१ अप्रैल तक ४ दिन दिन भयंकर गोले वर्षा कर कै० बर्नर ने चिरगाँव दुर्ग ध्वस्त कर दिया था। बखतसिंह के ज्येष्ठ पुत्र वीरगति को प्राप्त हुये थे। अंत में राव बखतसिंह ने लड़ई रानी, पुत्र छत्रसाल एवं पौत्र रघुनाथ सिंह को लेकर ओरछा राज्य के मोहनगढ़ दुर्ग में शरण ली थी।[१८] परन्तु कम्पनी सरकार ने ओरछा राज, सुजानसिंह को अंग्रेज विरोधी निरूपित करते हुये गोद प्रकरण लंबित कर दिया था।[१९] स्थिति उलझती देख राव साहब १८४२ के जनवरी माह में मोहनगढ़ त्याग कर जैतपुर के विद्रोही राजा पारीछत के पास जा रहे थे कि पनवाड़ी के पास अंग्रेजी सेना ने आक्रमण कर दिया। जिसमें राव बखतसिंह वीरगति को प्राप्त हो गये थे।[२०]

जैतपुर के महाराजा पारीछत ने जैसे ही अंग्रेजी व्यवस्था विरोधी विद्रोह का बिगुल फूंका, तो कम्पनी सरकार की सेना और राजा रतनसिंह ने उनके विरुद्ध पूर्ण सैन्य तैयारी कर, उनकी घेराबन्दी कर दी थी। जिस कारण वह जैतपुर क्षेत्र त्याग कर पन्ना-दमोह की सीमा पर सिमिरिया जागीर में जाकर रहने लगे थे। यहाँ रहते हुये उन्होंने हीरापुर के हृदयशाह लोधी के संपर्क से हटा हिड़ोरिया के जमींदार का सहयोग लिया तथा १८४२ ई० के क्वार मास में धूम धाम से दशहरा उत्सव मनाने के बहाने अंग्रेज विरोधी मुहिम का संचालन किया था।[२१]

१८. आगरा पौ० कन्सलटेशन क्र० १६, जुलाई १६, सन् १८४१।

१९. फॉरेन पोलिटिकल १८४२ कन्सलटेशन १७-१-१८४२ फा० नं० ४२ राष्ट्रीय अभि० दिल्ली।

२०. वि० प्र० का इतिहास, पृ० ४२२।

२१. मध्य प्रदेश में स्वाधीनता आन्दोलन का इतिहास, पृ० ३७-३८।

मार्च, १८४२ में मधुकरशाह एवं जवाहरसिंह ने सागर परिक्षेत्र में योजनाबद्ध रूप से लूट और उपद्रव प्रारंभ किये थे। मधुकर शाह ने धामोनी और खिमलासा को तथा जवाहरसिंह ने खुरई, नरयावली और विनायका को लूट कर कम्पनी प्रशासन को अस्त-व्यस्त कर दिया तथा उनकी अनियंत्रित अराजक कार्यवाहियों से भयात् क्षेत्र के सभी ठाकुर, लोधी और मालगुजार उनका साथ देने लगे थे। इससे प्रोत्साहित होकर उन्होंने कर्मचारियों का वध करना, कोषालयों को लूटना, ग्रामों में आग लगा कर जला देने आदि कार्यों को करना प्रारंभ कर दिया था। इस प्रकार हत्याओं, लूट और आगजनी की वारदातों के कारण क्षेत्र के लोगों में भारी भय और आतंक व्याप्त था।[२२]

मधुकरशाह और जवाहरसिंह की विद्रोहात्मक क्रियाओं से प्रोत्साहित होकर मदनपुर के डिल्लनशाह गोंड ने सागर के देवरी क्षेत्र तथा नर्मदा के तटवर्ती चावरपाठा परगने को लूट कर अपना आतंक और प्रभाव स्थापित कर लिया था।[२३] डिल्लनशाह गोंड ने तो अपनी ओर से चावरपाठा में सर्यवकराव को कामदार नियुक्त कर दिया था। उसने गुआ ठुल्ला गाँव के खेत सिंह एवं रणजीत सिंह को अपना सहयोगी बना लिया था। डिलन शाह ने पूरे क्षेत्र में अपने लेखपाल नाजिर और सरिस्तेदार नियुक्त कर, नर्मदा के घाटों का भी ऐसा प्रबन्ध किया था कि दक्षिण से कोई अंग्रेज न आ सके। इसके लिये चिम्मन को बेलखरीघाट पर, बृजभूषण को बटिया घाट पर, खेत सिंह को सागर घाट और महूकसिंह को कृपानी घाट की सुरक्षा का दायित्व सौंपा था।[२४]

कम्पनी सरकार हैरान थी कि एक वर्ष बीत जाने पर भी विद्रोहियों को न पकड़ा जा सका। विद्रोही गुरिल्ला पद्धति से लड़ते थे। इसके साथ ही अंग्रेजों की गतिविधियों का पता विद्रोहियों को तो लग जाता था, परन्तु विद्रोहियों की योजनाओं का सरकार को पता न चल पाता था। बड़े-बड़े मालगुजार उन्हें भोजन देते थे। प्रभावित खतरों से सचेत कर देते थे। लोगों में विद्रोहियों का भय इतना समाया था कि कोई उनके विरुद्ध बात ही न करता था।[२५]

जब लंबी अवधि तक विद्रोही न पकड़े जा सके, तो हुसंगावाद के कै०

२२. पार्लियामेंन्टी पेपर्स, अप्रैल १८४४, पत्र सागर के कै० शैक्सपियर का।
२३. सागर डि० ग० ८६
२४. मध्य प्रदेश स्व० आ० का इतिहास पृ० ३६।
२५. वही ग्रंथ, पृ० ३६-४६।

ओसँग ने सागर के कमिश्नर को सुझाव दिया कि दमन और शक्ति के स्थान पर क्षमादान, आत्मसमर्पण और प्रेम की प्रक्रिया को यदि अपनाया जावे, तो परिणाम लाभकारी हो सकते हैं। फिर गणमान्य व्यक्तियों के विशाल समूह को दण्ड देना राजनीति के विरुद्ध है।[२६]

इस सुझाव पर बुन्देलखंड में गवर्नर जनरल के राजनैतिक प्रतिनिधि एवं कम्पनी सरकार के सचिव टी० एच० मैडक ने २ नवम्बर, १८४२ को गवर्नर जनरल लार्ड ऐलिनबरो की तरफ से घोषणा की कि जो विद्रोही, अपराधी प्रवृत्ति त्याग कर सामाजिक जीवन बिताने की इच्छा से आत्मसमर्पण करेंगे। अपनी सरकार उनके अपराध विस्मृत कर उन्हें क्षमा दान का वचन देती है।[२७]

लार्ड ऐलिनबरो की क्षमादान घोषणा से विद्रोहियों का उत्साह ढीला हो गया था। जो उनके सूचना सूत्र थे, वे उन्हें आत्म समर्पण की सलाह देने लगे थे। शाहगढ़ के राजा बखतबली एवं बानपुर के राजा मर्दनसिंह क्षमादान घोषणा से प्रेरित होकर विद्रोहियों को उपस्थित कराने अथवा पकड़वाने में सक्रिय हो उठे थे। राजा बखतबली शाहगढ़ ने २१-११-१८४२ को हीरापुर के लोधी जागीरदार हृदय शाह को पकड़वा दिया था। जनवरी, १८४३ में जैतपुर के विद्रोही राजा पारीछत को जैतपुर निवासी मजबूत सिंह कायस्थ ने जतारा में आत्मसमर्पण करवा कर अंग्रेजों को सौंप दिया था, जिन्हें कानपुर में कैद रख कर फांसी दे दी गई थी।[२८]

जनवरी, १८४३ तक चिरगाँव, जैतपुर, हीरापुर, दमोह एवं सागर के देवरी क्षेत्र में तो शान्ति हो गई थी, परन्तु, सागर से ललितपुर के विशाल भूभाग में मधुकर शाह नाराट और उनके साथी क्रियाशील ही थे। उन पर क्षमादान घोषणा का कोई प्रभाव न पड़ा था, बल्कि डोंगरा गाँव का दौलत सिंह बुन्देला भी उनके गिरोह में सम्मिलित हो गया था। इस प्रकार मधुकरशाह, जवाहर सिंह, गणेश जू एवं दौलत सिंह के संयुक्त गिरोह ने ललितपुर से सागर के मध्य घाटी के वनाच्छादित भूभाग में लूट, भय, अपहरण और

२६. फायल क्र० ७८३, कन्सलटेशन १८४२, रिकार्ड रूम नागपुर।
२७. फोरेन पो० कन्सलटेशन १६-११-१८४२ फा० नं० १२५, रा० अ० नई दिल्ली।
२८. मध्य प्रदेश में स्व० आ० का इतिहास, पृ० ४०, १८५७ को विद्रोह में विन्ध्य प्रदेश का योग, पृ० ११-१२।

अराजकता का वातावरण उत्पन्न कर दिया था। [29]

कम्पनी सरकार के समक्ष अब केवल पूर्वी दक्षिणी बुन्देलखण्ड के घाटी परिक्षेत्र के विद्रोहियों का दमन ही शेष था। डिलनशाह गोंड़ शान्त था। जबलपुर-नरसिंहपुर क्षेत्र में पुनः कम्पनी सरकार की व्यवस्था स्थापित हो चुकी थी। इसलिये सागर के डिप्टी कमिश्नर असानी ने १८४३ ई० के अन्त में २०० सैनिक मय तोपखाना मधुकर शाह के दमनार्थ नाराट भेजे, जिन्होंने उनकी गढ़ी को तोपों से ध्वस्त कर दिया था। इसके प्रत्युत्तर में मधुकर शाह ने धामोनी को लूटा और कई अंग्रेजी सैनिकों को मार डाला था। अंग्रेजी सेना पीछा करती हुई धामोनी पहुँची ही थी कि मधुकर शाह ने अपने साथियों को विभक्त कर यत्र-तत्र बिखेर दिया था और स्वयं जवाहर सिंह के साथ बीना नदी की ओर गया, तथा चकमा देकर जैसे ही सागर की ओर मुड़े, तो नीलकण्ठ की पहाड़ी में अंग्रेजी सेना ने घेर लिया था।[30] दोनों ओर से गोलियाँ चलीं, जिसमें जवाहर सिंह की मृत्यु हो गई तथा मधुकरशाह घायल हो गये थे। प्रचलित लोकगीत है—

> चार तरफ से मार पड़ी तब, बड़े बड़े ठाकुर लगे गिरन।
> मधुकरशाह का दिल घबराया, जवाहरसिंह का हुआ मरन॥

नीलकण्ठ पहाड़ी के घेरे से निराश घायल मधुकरशाह छिपते-बचते अपनी बहिन के घर, बानपुर राज्यान्तर्गत कुलगुवाँ ग्राम जा पहुँचे थे, परन्तु बानपुर के राजा मर्दनसिंह, जो विद्रोहियों को पकड़वा कर हैमिल्टन की सहानुभूति अर्जित कर, अपना पूर्वकालिक चंदेरी क्षेत्र प्राप्त करना चाहते थे। इसलिये चौधरी रामसिंह के नेतृत्व में अपने सैनिकों द्वारा कुलगुवाँ से सोते समय मधुकर शाह को तथा घरौली से गणेश जू को पकड़वा कर कै० बैकमैन के हवाले कर दिया था। इन दोनों को सागर जेल में राजद्रोह एवं अराजकता के आरोप में फांसी दे दी गई थी।[31]

परन्तु डोंगर का दौलतसिंह अभी भी जनता एवं प्रशासन को सिरदर्द

---

२९. पार्लियामेंट पेपर्स, अप्रेल १८४४-एलीमेन पत्र क्र० ६६, १० अक्टूबर १८४३ कै० उल्लास का पत्र शैक्सपियर के नाम मालथौन से क्र० ८३, जुलाई २१, सन् १८४३।

३०. पं० श्री लोकनाथ शिलाकरी का शोध आलेख २ फरवरी ६८ (सागर) मधुकर शाह बुन्देला।

३१. वासुदेव गोस्वामी-विद्रोही बानपुर, पृ० १४।
सागर डि० ग० सन् १९०५ पृ० ८६

था। वह मालथौन घाटी के एक नाला के आसपास झाड़ियों में छिपा रहता था तथा आने जाने वाले स्त्री-पुरुषों का अंग-भंग कर दिया करता था। वह पुरुषों की नाक एवं स्त्रियों की नाक एवं स्तन काटा करता था। उसके आतंक से मार्ग अवरुद्ध हो गये थे। उसके कुकृत्य स्थल को 'नकटा' नाला कहा जाने लगा था। कठिन परिश्रम के पश्चात् अंग्रेजी सैनिक दौलत सिंह को पकड़ पाये। जिसे विद्रोह करने एवं सामाजिक अपराधों के आरोप में झाँसी में फांसी के फंदे पर झुला दिया दिया गया था।[32] इसी के साथ बुंदेलखण्ड का बुन्देला विद्रोह ठण्डा हो गया था।

—पुरानी टेहरी, टीकमगढ़

---

३२. सागर डि० ग०, पृ० ९०।

शब्द बोलते हैं

—डा० वीरेन्द्र 'निर्झर'

छैल—छविल्ल, छइल्ल, छइल, अइ > ऐ

'जो तुम छैल छला बन जाते'—सुन्दर नवयुवक, छवि सम्पन्न

'छैल चिकनिया बने फिरत'—बहुत बनठन कर रहने वाला, निठल्ला

हेठ/हिट—अधःस्थ, अहट्ठ, हेट्ठ, ट्ठ > ठ कभी-कभी महाप्राणत्व का लोप

'हेठो लरका बहू बड़ी'—छोटा, आयु में छोटा

'हेठी हो गई'—प्रतिष्ठा या मान हानि, हीन

ठेंगा—हेठ+अंग, (विपर्यय) ठेंग, आ का आगम

'ठेंगा दिखाबो'—अंगूठा, किसी को उसकी विफलता पर चिढ़ाने या लज्जित करने के लिए अंगूठा दिखाना, उपहास करना, नकारना

'हमाये ठेंगा सें'—हमारी बला से

'जम को ठेंगा बुरओ है'—डंडा, सोटा

ड़ेंगुर—ठेंग+गर, ठेंगर, ठ > ड तथा उ का आगम

'लरका बिन वऊ ड़ेंगुर सीं'—वह लड़की का टुकड़ा या डंडा जो उच्छृङ्खला पशुओं के गले में इसलिए बांधा जाता है कि वे भाग न सकें।

डींग—डीन, डीङ, ङ को अंग करके पढ़ने की प्रवृत्ति के कारण 'डींग हाँकना' —उड़ना, शेखी, अपने बल योग्यता साहस आदि के संबंध में अभिमान पूर्वक बहुत बड़ा चढ़ाकर कही जाने वाली बात।

अनारी—अनार्य, अनारिय, इ > ई

'छेड़त गैल अनारी'—शरारती,ऊधमी

अनारी/अनाड़ी—अज्ञानी, अण्णाड़ी, अनाड़ी, ड़ > र

'अनारी को सौदा बाराबाट'—नासमझ, नादान, अकुशल, गंवार

अठाई—अस्थाई, अट्ठाई, ट्ठ > ठ

'गांव के लोग अठाई डर टिड़कना नाऊ'—शरारती, चंचल, अस्थिर

गोट—गोष्ठ, गोट्ठ, गोठ, ठ > ट

'गोट जुरने'—एक ही वर्ग, विचार के लोगों का समूह, सभा, विद्वत गोष्ठी

'कारक देव को गोटें हो रईं'—कारक देव के गीत, देवी-देवताओं के गीत जो किसी उद्देश्य विशेष से सामूहिक गाये जाते हों।

— कोष्ठ, कोट्ठ, कोट, क > ग

'छींट की घंघरिया गजी की गोट'—किनारी, चूनर, साड़ी, धोती, लहंगा, लिहाफ आदि के किनारों पर सुन्दरता के लिए लगाई जाने वाली कपड़े की पट्टी

'गुना गोंठना', 'बातें गोंठना'—किनार बनाना, सजाना, बनाना

— गुटिका, गोटिअ, गोटी

'गोटन या गोटें खेलना'—कंकड़, पत्थर आदि का छोटा टुकड़ा जिससे बच्चे खेल खेलते हैं, चौपर, शतरंज आदि की गोटें, विशेष आकृति के टुकड़े।

'गोटें बैठाना'—मुहरा, कार्य सिद्धि के लिए चलने वाली चाल

गोठ—गो+कोष्ठ, गोट्ठ, ट्ठ > ठ

'ठांड़े गोप गोठ के दोरें कान्हा गाइ दुहैं'—गौशाला, पशु बांधने का स्थान

ढिग—ढिक, क > ग

'लाल चुनरिया की ढिग कारी'—किनार, छोर, गोट

'ढिगा मातनो दूर पानी'—पास, निकट

उज्जापन/उजाना—उद्यापन, उज्जापन, ज्ज > ज, व का लोप तथा आ का आगम

'शुक्कवार राातते सो आज उज्जापन आय होने'—व्रत आदि का पारण, समाप्ति, किसी कार्य की विधिपूर्वक समाप्ति

'चोपर उजैदई का'—किसी कार्य को छोड़ना

दिशाबोध

● रामनाथ नीखरा

किवाड़ खोलकर दिगनाथ ने साइकिल दालान में टिका दी और बैठक में आकर सोफे पर बैठ गया। थोड़ी देर बाद उसे लगा कि उसका अंग प्रत्यंग टूटा जा रहा है। आँखें बन्द कर वह वहाँ उसी सोफे पर पसर गया, किन्तु····।

····किन्तु आँखें बन्द करने पर भी उसका घर, मुहाल, चौपाल, ग्राम सब उसकी अन्तर्दृष्टि के सामने आ खड़े हुये। देखते ही वह भाव विभोर हो उठा। सोचने लगा कि काश वह ग्राम और उसके सारे चित्र हमेशा के लिए उसके सामने रह सकते, तो कितना अच्छा होता, कितना? लेकिन····लेकिन अपनी आजीविका को मृग-मरीचिका में पड़कर दूर, बहुत दूर भाग आने पर क्या यह सम्भव है? नहीं।

न सही, परन्तु क्या मैं इन सबको भुला सकता हूँ? विश्वास तो नहीं होता, होना भी नहीं चाहिये, किन्तु इधर गाँव में जो तनाव आया है, जो अलगाव का भाव आया है, क्या वह सुखद है? सचमुच····सचमुच सुखद नहीं।

सोचते-सोचते दिगनाथ ने करवट बदली, मानो दुखद दृष्टि से ओझल करना चाहता हो, परन्तु दूसरे ही क्षण आठ-दस दिन पूर्व की गाँव की पंचायत, वाद-विवाद तथा उससे उत्पन्न कलह व संघर्ष एक-एक करके उसके सामने मूर्तिमान हो उठे। घबड़ाकर दिगनाथ ने आँखें खोल दीं और उनसे मुक्ति पाने का प्रयास करने लगा, किन्तु तभी उसे लगा कि चौधरी ब्रजनाथ कह रहे हैं—भक्तेश्वर का मंदिर एक तीर्थ स्थान है, उसकी अपनी मर्यादायें हैं। यहाँ पुजारी को छोड़कर कभी किसी ने श्री विग्रह पर जल नहीं चढ़ाया। सभी अपना जल अथवा गंगाजल पुजारी को देते हैं तथा वही उस जल से भगवान शंकर का अभिषेक करते हैं। आप चाहें तो आपका गंगाजल भी पुजारी भगवान शंकर को समर्पित कर देंगे। अन्यथा····।

'अन्यथा क्या?' उतावलेपन के कारण शिवनाथ का स्वर लड़खड़ा उठा था।

'अन्यथा आप अपना गंगाजल गाँव के किसी शिवमंदिर में चढ़ा सकते हैं।'····ब्रजनाथ के स्थान पर इस बार यदुनाथ पाण्डेय ने उत्तर दिया।

'लेकिन····' काँवर चढ़ानेवाले व्यक्तियों की ओर से उनका पक्ष प्रस्तुत करते हुये अध्यापक शिवनाथ ने निवेदन किया—'लेकिन सोरों से काँवर लादकर वे सब यह गंगाजल भगवान भक्तेश्वर पर ही चढ़ाने को लाये हैं, अन्य किसी पर नहीं। इसलिए अनुमति प्रदान करने की कृपा करें, महाराज।'

'शिवनाथ, तुम शिक्षित तो हो ही, शिक्षक भी हो। इस प्रकार का हठ करना तुम्हारे लिये शोभा नहीं देता।' अपने आप को संयमित करने का उपक्रम करने पर भी ब्रजनाथ का स्वर कुछ उखड़ा-उखड़ा सा हो रहा था।

'महाराज' शिवनाथ को चौधरी के क्रोध का लक्ष्य बनते हुये देखकर श्रीनाथ बोला 'आप शताब्दियों से पतित पावन भागवान् शिव पर जल चढ़ाते आ रहे हैं, यदि हम हरिजन एकाध दिन जल चढ़ायेंगे तो इससे वे पतित नहीं हो जायेंगे। भगवान् को छूत नहीं लग जायेगी। फिर हम भी तो हिन्दू हैं। आपको अनुमति देने में क्या आपत्ति है?'

'क्या यह भी बताने की आवश्यकता है श्री नाथ?' यदुनाथ का उत्तर था—'यह तो सूर्य के प्रकाश की भाँति स्पष्ट है और वह यह कि जिस मंदिर में चौधरी तथा पाण्डेय को भी जल चढ़ाने का अधिकार नहीं, तुम उसी मंदिर में जल चढ़ाने का अधिकार चाहते हो।'

'हमें यह स्वयं अच्छा नहीं लगता, महाराज, शिवनाथ ने कुछ और विनम्र पड़ते हुए कहा—'परन्तु हमारे इन साथियों ने भगवान् भक्तेश्वर पर ही गंगाजल की काँवर चढ़ाने की मनौती की थी। आशा है आप इनकी तथा हमारी इस विवशता को समझने की कृपा करेंगे।'

'कठिनाई तो यह है शिवनाथ,' ऐनक को दुपट्टे के छोर से साफ करते। हुए ब्रजनाथ ने कहा—'कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी विवशता की तो दुहाई देता है, परन्तु अवसर आने पर वही दूसरों की विवशता को नहीं समझना चाहता।'

'फिर आप हमें क्या करने के लिये कहते हैं?' श्रीनाथ ने जानना चाहा।

'चौधरी जी, उसे पहिले ही बता चुके हैं।' कुछ खीझ के साथ यदुनाथ ने उत्तर दिया।

'क्या आप सबका भी यही निर्णय है?' अन्य उपस्थित जनों की ओर उन्मुख होकर शिवनाथ ने पूछा।

किसी ने कोई उत्तर नहीं दिया। ब्रजनाथ ने ही पुनः कहा 'यही समझिये।'

'ठीक है····' कहकर शिवनाथ उठ खड़ा हुआ। उसके जाते ही अन्य हरिजनों ने भी उसका अनुसरण किया। यह देखकर सवर्ण पंचों ने चुपचाप एक दूसरे को देखा और फिर किसी अव्यक्त आशंका से घिरे हुए अपने अपने घर चले गये।

दिगनाथ को लगा, जैसे वह भी अभी-अभी पंचायत से लौट कर आया हो। अपने मन में व्याप्त भय को अभिव्यक्ति देने के लिये जैसे ही वह अपने कक्ष की ओर मुड़ने को हुआ, उसने अनुभव किया कि संध्या के गहराते हुये धुंधलके से बचने के लिये कोई बैठक का स्विच आन कर रहा है। कौन हो सकता है? बड़े भैया? यह सोचकर वह उठने को हुआ, तभी विद्युत के दुधिया प्रकाश में उसने देखा कि दिवाकर भृत्य उसके सामने खड़ा कह रहा है—'क्या सब्जी बनेगी सर? परवल या और कुछ?'

'जो भी उचित समझो, बना लो और सुनो, आज दूध नहीं है। पहिले दौड़कर दूध तो ले आओ।' भूल का अहसास करते हुए दिगनाथ ने धीरे से कहा।

'बहुत अच्छा' कहकर दिवाकर जैसे ही जाने को हुआ, दिगनाथ ने संकेत से उसे किवाड़ उढ़काने को कहा और फिर यथावत लेट गया। इस बार उसने सोचा कि वह किस प्रकार इन विचारों से मुक्ति पाले, तो अच्छा रहे। लेकिन बरबस दूसरी ओर ध्यान ले जाने का प्रयत्न करने पर भी हठात् वही दृश्य, वही विचार रह-रहकर उसकी ध्यान परिधि में आने लगे। निरुपाय सा वह सोचने लगा। चौधरी काका ने पंचायत में जो कुछ कहा था, वह सचमुच सत्य था और है, इसमें कोई संदेह नहीं। किन्तु वह शिवम् भी है, ऐसा नहीं कहा जा सकता, क्यों? क्यों नहीं कहा जा सकता? नहीं, नहीं··· मर्यादाओं की स्थापना के मूल में शिवम् नहीं तो और क्या रहता है? नहीं-नहीं, मर्यादायें समाज के व्यापक हित और स्थायी कल्याण के लिये ही होती हैं और यह मर्यादा भी उसका अपवाद नहीं है।

क्यों नहीं है? इस परिवर्तनशील जगत में जहाँ सब कुछ अस्थिर है, मर्यादायें अपरिवर्तनीय कैसे हो सकती है? सचाई तो यह है कि मर्यादाओं की भी कुछ मर्यादायें होती हैं। इसलिए देश, काल के अनुसार उनमें भी परिवर्तन होना चाहिये। होना चाहिये न?

कुछ भी क्यों न हो, मुझे तो लगता है कि परिवर्तित परिवेश में चौधरी को थोड़ी उदारता से काम लेना चाहिये था और यदि वे ऐसा करते, तो वज्र-पात न हो जाता। इसके विपरीत पतित पावन को अपनी पतित पावनता प्रमाणित करने का एक स्वर्ण अवसर और प्राप्त हो जाता, अस्तु····।

अस्तु, वस्तु कुछ नहीं। यदि चौधरी काका उदारता नहीं दिखा सके, तो शिवनाथ भी तो ऐसा कर सकता था। यह तो वह भी स्वीकार करेगा कि परिवर्तन सदैव धीमी गति से चलते हैं और कोई नहीं कह सकता कि आज

भी वे चल नहीं रहे। उसे ही क्या आवश्यकता थी कि वह उसी अधिकार को प्राप्त करने पर बल देता, जिसकी प्राप्ति पीढ़ियों से पुजारी को छोड़कर अन्य किसी को नहीं हुई। ठीक है, परन्तु उल्लास चाहे धर्म से संबंधित हो अथवा अन्य किसी से वह सदैव सीमाओं के उल्लंघन में ही अपनी अस्मिता को साक्षात्कार करता है।

फिर····फिर भला शिवनाथ का क्या दोष?

दोष? न शिवनाथ का है न चौधरी का। परन्तु इसका फल उन्हें ही नहीं, सारे समाज को भोगना पड़ेगा। क्योंकि शिवनाथ चुप नहीं बैठेगा, वह विधान का सहारा लेगा, शासन से सहयोग प्राप्त करेगा। और अधिकार भी मांगकर नहीं, प्रत्युत बलपूर्वक छीन कर प्राप्त करेगा। उधर दूसरी ओर कुछ मर्यादाप्रेमी चौधरी ब्रजनाथ के आस-पास एकत्र होकर शिवनाथ का प्रतिरोध करेंगे और फिर····फिर उसके परिणामस्वरूप जो असुन्दर, जो अशिव घटित होगा, कौन कह सकता है कि उसे देखकर स्वतः सत्य हतप्रभ और कुण्ठित नहीं हो उठेगा।

अवश्य हो उठेगा····कहकर दिगनाथ ने करवट बदली, मानो वह विचारों को भी करवट देना चाहता हो। अभी यह सब चल ही रहा था कि उसे बैठक के किवाड़ों पर हल्की सी थपथपाहट सुनाई दी। दिवाकर होगा, ऐसा विचार करके वह उठा और किवाड़ खोल दिये। एक क्षण में ही नई दुनिया का वितरक उसके सामने था। उसने अखबार निकाल कर दिगनाथ की ओर बढ़ा दिया।

अब फिर चारों ओर सन्नाटा था। एक गहरी उदासी सिर्फ विद्युत अपनी मुस्कान बिखेर रही थी। दिगनाथ के मन में आया, लाइट ऑफ कर दे, परन्तु हाथ में लिये हुए अखबार के मुख पृष्ठ पर जैसे ही उसकी दृष्टि पड़ी, वह चौंक उठा। व्यग्र होकर उसने सामने पड़ी मेज पर अखबार फैला दिया और फिर तेज रोशनी में आंखें फाड़-फाड़ कर पढ़ने लगा—गोवर्धन थानान्तर्गत ग्राम गाजीगढ़ के निकट हरिजनों की हत्या।'

तो, तो फिर आखिर····आखिर वही हुआ जिसकी आशंका थी। एक निश्वास छोड़कर दिगनाथ ने अखबार से अपनी दृष्टि दूर हटा ली और शून्य में देखने लगा। किन्तु थोड़ी देर बाद उसके मन में आया कि पहिले पूरा समाचार तो पढ़ लो। वह फिर पढ़ने लगा, लिखा था—शिवपुरी जिले की तहसील पोहरी में गोवर्धन थानान्तर्गत ग्राम गाजीगढ़ के निकट कुख्यात दस्यु ब्रजेन्द्रसिंह ने भक्तेश्वर पर जल चढ़ाने जाते हुये तीन हरिजनों की हत्या कर

दी । यद्यपि आरक्षी अधीक्षक ने जल चढ़ाने जाने वाले हरिजनों की सुरक्षा की कड़ी व्यवस्था की थी, परन्तु दुर्भाग्य से सवर्णों के सम्भावित उत्पात से आशंकित होकर उन्होंने उस मार्ग का अनुसरण नहीं किया, जिस पर सशस्त्र आरक्षक उनकी सुरक्षा के लिये नियुक्त थे, उसके विपरीत ऊबड़-खाबड़ रास्ते से वे मंदिर की ओर बढ़े । इसके पूर्व कि वे खैरबानी का जुगल पार कर सकें, एक तिराहे पर आकर ब्रजेन्द्रसिंह ने उनका मार्ग अवरुद्ध कर दिया और उनमें से तीन को अत्यन्त नृशंसतापूर्वक गोली से उड़ा दिया ।

ऐं यह हुआ···· कहकर दिगनाथ ने अखबार समेट कर रख दिया और फिर सोचने लगा । ऐसा क्यों हुआ ? क्या ···क्या ब्रजेन्द्रसिंह इन्हें सचमुच लूटने के विचार से आया था ? यदि नहीं तो फिर यह सब क्यों हुआ ? जीते-जागते पिण्डों की नृशंस हत्या करने वाले दस्यु ब्रजेन्द्रसिंह के मन में पाषाण हृदय देव की पवित्रता की रक्षा का विचार कैसे आया ? क्या यह एक खुला षड्यंत्र नहीं है ? हो न हो, परन्तु मैं कैसे विश्वास कर लूं कि नहीं है, ओह····।

'सर, तो फिर परबल बना लूं ?' दिवाकर के कथन को सुनकर दिगनाथ की विचार शृङ्खला टूट गई । दो क्षण वह यह सोच ही न सका कि दिवाकर यहाँ कब व कैसे आ गया ? किन्तु जब दिवाकर ने पुन: वही प्रश्न दोहराया, तो कुछ खीझते हुये उसने कहा—'कुछ मत बनाओ, दिवाकर आज मैं कुछ नहीं खाऊँगा । मुझे बिल्कुल भूख नहीं ।'

'कुछ तबियत खराब है ? यदि आज्ञा हो तो डा० गुप्ता को बुला लाऊँ ।'

'नहीं, इसकी कोई आवश्कता नहीं ।'

'फिर कुछ तो लीजियेगा सर, कुछ नहीं, तो दूध दलिया ही ले लीजिये ।'

'प्रायश्चित में कुछ नहीं लिया जाता, दिवाकर, आज मैं कुछ नहीं लूंगा । कुछ भी नहीं । तुम जाओ । काम निबटाओ । जाते समय चाय बनाकर दे जाना ।'

जाने का स्पष्ट निर्देश पाकर भी दिवाकर वहाँ से नहीं गया । सोचने लगा स्यात् उसकी आत्मीयता देखकर साहब कह दें—अच्छा तो जो समझो बना ले, परन्तु थोड़ा सा ही बनाना । किन्तु दिगनाथ दूसरी ही बात सोच रहा था । माना कि इस घटना से उसका कोई संबंध नहीं है, परन्तु वह उस समाज का घटक तो है ही जो शताब्दियों से अन्त्यजों, हरिजनों की उपेक्षा करता आ रहा है । धर्म के नाम पर अधर्म को प्रश्रय देता आ रहा है । तब··· तब मुझे क्यों प्रायश्चित नहीं करना चाहिये ? क्यों ?

दिगनाथ को गम्भीर चिन्तन में निमग्न देखकर दिवाकर को लगा कि साहब आज सचमुच भोजन नहीं करना चाहते । किवाड़ों को लगाकर वह

अन्दर जाने को मुड़ा, ठीक इसी बीच उसे खिड़की पर रमानाथ दिखाई दिया । उसने पूछा—'साहब हैं या नहीं ?'

'कौन रमानाथ ?' इसके पूर्व कि दिवाकर उत्तर दे, दिगनाथ ने किवाड़ खोल दिये और कहा—'तुम अच्छे अवसर पर आये, मैं तुम्हीं से मिलने आ रहा था. अच्छा किया तुम आ गये ।'

'क्यों क्या कोई विशेष बात है ?'

'क्या आपने आज की 'नई दुनिया' नहीं पढ़ी ?'

'पढ़ी है, परन्तु उसका विवरण सेकण्डहैण्ड नॉलेज पर आधारित है, जब कि घटना के संबंध में मुझे फर्स्टहैण्ड नॉलेज है ।'

'अच्छा, सो कैसे ?'

'मैं आज सबेरे ही घर से आया हूँ ।'

'ऐसा ? तो क्या आप ग्वालियर से घर चले गये थे ?'

'जी हाँ ।'

'अच्छा तो बताओ, क्या हुआ ?' फिर दिवाकर की ओर मुड़कर दिगनाथ बोला—'जाओ, अब चाय बना लाओ ।'

जी कहकर दिवाकर अन्दर चला गया और दिगनाथ रमानाथ के पास आकर बैठ गया । कुछ क्षणों तक दोनों चुप रहे, पश्चात् रमानाथ बोला—'आप अखबार तो पढ़ ही चुके होंगे ?'

'पढ़ चुका हूँ और पंचायत मेरे सामने ही हुई थी ।' दिगनाथ कहने लगा—'इन दोनों के अन्तराल पर प्रकाश डालो ।'

'वही कर रहा हूँ ।' कहकर तथा दो क्षण रुक कर रमानाथ कहने लगा—'पंचायत से लौटकर शिवनाथ ने समस्त हरिजनों को एकत्र किया और एक ओजस्वी भाषण देता हुआ बोला कि धर्म-विधान तथा शासन सभी अपने पक्ष में हैं, आप लोग चिन्ता न करें और संघर्ष करने के लिये तत्पर रहें ।'

'परन्तु ···परन्तु क्या यह लड़ाई टाली नहीं जा सकती ?' बूढ़े बल्देव ने कहा—'न हो तो जैसा चौधरी ने कहा है, वैसा ही कर लो ।'

'बाबा' तुम जैसों की कायरता से ही तो हम शताब्दियों से यह दासता भोग रहे हैं ।' चिढ़ते हुये श्रीनाथ कहने लगा—'किन्तु कुछ भी क्यों न हो, हम सब अब इन ज्यादतियों को सहन नहीं करेंगे ।'

श्रीनाथ की झिड़की खाकर बूढ़ा बल्देव चुप रह गया । किसी ने भी कुछ नहीं कहा । शिवनाथ ने जनसमूह की ओर उन्मुख होकर पूछा—'तो फिर आप सब मेरा साथ देने के लिये तैयार हैं ?'

'हृदय से।' श्रीनाथ का उत्तर सुनकर अन्य लोग भी कह उठे—'हम सब तैयार हैं।' फिर क्या था, शिवनाथ वहाँ से सीधा भोपाल पहुँचा और अवसर निकाल कर मुख्यमंत्री से मिला। उसने उन्हें अपने संकल्प से तो अवगत कराया ही, सवर्णों की प्रतिक्रिया की भी जानकारी दी। निवेदन किया कि इस पुनीत कार्य के सम्पादन में उन्हें शासन का पूर्ण संरक्षण तथा सहयोग मिलना चाहिये।

मुख्यमंत्री ने शिवनाथ की बात को ध्यानपूर्वक सुना तथा उन्होंने लछी व देवली के नरसंहार को दृष्टि में रखकर तत्काल योग्य व्यवस्था करने का निर्णय लिया और जिलाधीश तथा आरक्षी अधीक्षक को हरिजनों के समुचित संरक्षण के लिये निर्देश दिए। यह भी आदेश दिया कि आप स्वतः तो सशस्त्र आरक्षकों सहित उनके साथ रहें ही, उपद्रव की आशंका को पूर्णतः समाप्त करने की दृष्टि से संभावित उपद्रवी व्यक्तियों से भी बराबर सम्पर्क बनाये रखें।

छोरिया, गाजीगढ़, गोवर्धन तथा भटनावर आदि ग्रामों के लगभग सौ व्यक्तियों को निरोध में लिया गया। स्यात् ही कोई ऐसा प्रभावी व्यक्ति हो, जो इस निरोध से बच सका हो।

'समझ गया अब यह बताओ कि ब्रजेन्द्रसिंह इस षड़यन्त्र में कैसे सम्मिलित हुआ?' ब्रजेन्द्रसिंह वहाँ का तो था ही, उस क्षेत्र में रहता भी था। अतः वहाँ की समस्त गतिविधियों से परिचित था।' कुछ रुककर तथा गले को साफ कर रमानाथ बोला—'फिर निरुद्ध व्यक्तियों में से कुछ उसके संबंधी भी थे। प्रतिशोध की भावना से प्रेरित होकर वह इस क्रूर कृत्य में सम्मिलित हो गया।'

'ठीक है, लेकिन आश्चर्य की बात तो यह है कि सुरक्षा को कड़ी व्यवस्था रहने पर भी वह इन लोगों की हत्या करने में सफल कैसे हो गया?' रमानाथ की आँखों में झाँकते हुये दिगनाथ ने पूछा।

'कई व्यक्तियों के निरोध में लिये जाने के कारण सवर्ण आतंकित थे और हरिजन आश्वस्त तथा उत्साहित। जल्दी मंदिर पहुँचने के लोभ में पड़कर उन्होंने मुख्य मार्ग का परित्याग कर दिया और ऊबड़-खबड़ पगडण्डियाँ पकड़कर मन्दिर की ओर चल दिये। दुर्भाग्य से शासन के गुप्तचर विभाग को तो इसका पता नहीं चल सका, परन्तु ब्रजेन्द्रसिंह के गुप्तचरों ने उसे सूचना दे दी। वह अपने साथियों को लेकर खेरवानी के जुगल की ओर बढ़ा और एक तिराहे पर आकर खड़ा हो गया। जैसे ही गंगाजल की कांवर लिए हरिजन वहाँ

पहुँचे, वैसे ही ब्रजेन्द्र ने पिस्तौल तान कर कहा—'जो लोग गंगाजल की कांवर भर कर लाये हैं, वे अलग हो जायें और शेष यहीं खड़े रहें।'

सुनते ही सब लोग स्तब्ध हो गये। किसी को समझ में ही नहीं आया कि वह क्या कह रहा है और क्या चाहता है। किन्तु जब उसने दुहराया, तो भय से कांपते हुए वे लोग एक-एक करके अलग-अलग हो गये। सामने रह गये केवल वे व्यक्ति, जो, उनके सजातीय तो थे, परन्तु बिना कुछ किये ही पुण्य के भागीदार बनना चाहते थे। ब्रजेन्द्रसिंह ने उन सबको गोली से उड़ा दिया और फिर कांवर लाने वाले व्यक्तियों को कहा—'जाओ तुम तीर्थयात्री हो, हत्या व्यवसायी होने पर भी मैं तुम पर हाथ नहीं उठाऊँगा।'

ब्रजेन्द्रसिंह ने उन्हें अभयदान दिया था, परन्तु वे अब भी भयातुर थे। आदेश पाने पर भी वे जड़वत वहीं खड़े रहे, स्यात खड़े भी रहते, किन्तु ब्रजेन्द्रसिंह स्वयं भी तो अपने चारों ओर बिखरे हुये आरक्षण दल से भयभीत था, अतः उनकी ओर विशेष ध्यान न देकर वह स्वतः भाग खड़ा हुआ।

उसके जाते ही वे सब धाड़मारकर रो उठे। बन्दूकें की गर्जना दूर-दूर तक पहिले ही पहुँच चुकी थी। उनके क्रन्दन को सुनकर आरक्षक तथा नागरिक उसी दिशा में दौड़ पड़े और····।

'सर, चाय लीजिये' दिगनाथ तथा रमानाथ के सामने कप रखते हुये हुये दिवाकर ने धीरे से निवेदन किया और फिर आदेश की प्रतीक्षा में कुछ हटकर वहाँ खड़ा हो गया। इधर रमानाथ ने अनुभव किया कि उसकी कथा समाप्त हो गयी है।

दिवाकर के अनुरोध पर अपने कथन को विराम देकर उसने कप उठाया और दिगनाथ को देने लगा। परन्तु यह क्या वह तो रो रहा है, रोये जा रहा है। उसकी सहृदयता से प्रभावित होकर रमानाथ बोला—'भावुक न बनो मित्र, स्मरण रखो कि समाज व राष्ट्र का प्रासाद भावुकता की बालुका पर नहीं, प्रत्युत बौद्धिता की ठोस भू पर खडा होता है। और उसकी निर्मिति तप, त्याग-रूपी प्रस्तर खण्डों तथा आत्मोत्सर्ग-रूपी चूने से होती है। इसलिए रोदन, क्रन्दन छोड़ो और यदि सचमुच चाहते हो कि इस घटनाओं की आवृति न हो, तो कोई उपाय खोजो···उपयुक्त तथा सशक्त उपाय।'

'उसी को खोजने के लिये तो वर्षों से आँखों में जमी हुई धुंध को बहा देना चाहता हूँ।' विनम्रता की प्रतिमूर्ति बनते हुये दिगनाथ ने उत्तर दिया। रमानाथ को लगा दिगनाथ ठीक कह रहा है। जब तक किसी के साथ आत्मीयता न हो, तब तक उससे सहानुभूति नहीं हो सकती और सहानुभूति के अभाव में राशि-राशि बौद्धिकता भी क्या कर सकती है? कुछ भी तो नहीं।

उसका मन दिगनाथ की प्रशंसा से पूरित हो उठा। दिवाकर को लगा कि चाय ठण्डी हुई जा रही है। बिना कुछ हो ही उसने रमानाथ तथा दिगनाथ दोनों के हाथों में चाय का प्याला पकड़ा दिया। वे भी स्यात् ऐसा ही अनुभव कर रहे थे। चुपचाप चाय सिप करने लगे।

जैसे ही चाय समाप्त हुई, रमानाथ उठ खड़ा हुआ और फिर नमस्कार कर घर की ओर चल दिया। दिवाकर भी काम समाप्त कर चुका था। आज्ञा लेकर वह भी चला गया। कमरे में रह गया, दिगनाथ केवल दिगनाथ। सूने एकाकीपन को दूर करने के लिये उसने तिलक का गीत रहस्य उठा लिया, परन्तु प्रयत्न करके भी वह अपने आपको उसके अध्ययन में नहीं लगा सका क्योंकि जैसे ही वह पढ़ने को हुआ, उसे लगा कि रमानाथ कह रहा है--मित्र समाज व राष्ट्र का प्रासाद भावुकता की बालुका पर नहीं, प्रत्युत बौद्धिकता की ठोस भू पर खड़ा होता है और उसकी निर्मित तप, त्याग—रूपी प्रस्तर खण्डों तथा आत्मोत्सर्ग रूपी चूने से होती है। वह भावविह्वल हो उठा। सोचने लगा--सचमुच सवर्ण समाज शताब्दियों से स्वधर्मावलम्बी इन हरिजन बन्धुओं को उपासना के अधिकार से वंचित कर उनके प्रति जो अनाचार और अत्याचार कर रहा है, उसकी कलंक-कालिमा को अपने प्रस्वेद तथा रक्त से ही धोया जा सकता है, और किसी प्रकार नहीं।

—पिछोर, जिला शिवपुरी, म० प्र०

मौत का डर बस गया है गांव में / ● उपेन्द्र मिश्र

शूल कोई चुभ गया है पाँव में,
मौत का डर बस गया है गाँव में।
प्यार के रिश्ते सभी अनुबन्ध हैं,
अजनबी हम, क्या रुकें इस ठाँव में।
उन दरख्तों का बुढ़ापा आ गया,
हम खड़े थे आज जिनकी छाँव में।
क्या करें विश्वास अपने माझियों का,
भर गया पानी उन्हीं की नाँव में।
कौन किसके दर्द का शिकवा करे,
सब लगे हैं छल-कपट के दाँव में।
जिन्दगी बेवक्त मौसम ने डँसी,
और छाले पड़ गए हर पाँव में!

टुकड़े हुए हैं लोग

ऐसा शहर है ये जहाँ उजड़े हुए हैं लोग,
रोशन है हर मुकाम पर उखड़े हुए हैं लोग।
हम दिल के आइने को लिए आए थे यहाँ,
देखा कि साफ शक्ल में बिगड़े हैं लोग।
जिनसे कभी यकीन न था बेवफाई का,
वे बँट गए हैं आज सब टुकड़े हुए हैं लोग!
शिकवा भी दर्द का यहाँ करना गुनाह है,
रोयें यहाँ कहाँ मुझे पकड़े हुए हैं लोग!
पत्थर भी एक बार पिघलता जरूर है,
एक ये हैं दिल को बेरहम जकड़े हुए हैं लोग।

वैसे तो इनके सिर पै शराफत का ताज है,
पर असलियत में आज ये छिपड़े हुए हैं लोग।
इतिहास इनके नक्शे कदम पर लिखेंगे हम,
लिखेंगे कि शैतान के मुखड़े हुए हैं लोग।

—लोड़ी, छतरपुर।

लाख लाख कौ दै दं जायं भरम

● द्वारका प्रसाद अग्रवाल 'बेचैन'

सदा मेल करकें रैबे में सबकौ सार बलम,
का जानें कब कीको होवै चलतौ काम खतम।

अलग अलग रै जुगल पुतरियाँ देखौ एक बनीं,
एकइ सात घूमतीं दोऊ कोऊ तनक न कम।

पाँच उंगरियाँ पाँच भाँत कीं मिल कें एक भईं,
बंध कें मुठिया लाख लाख कौ दै दै जायँ भरम।

नइयां दिसा एक कानन कीं सुनतन एक बनें,
भुगरत नइयां एकइ कोदी मिल मिल चलत कदम।

बारी बारी पै छांड़त सुर नकुआ हिल मिल कें,
संगै सुर तजबे झगरें तौ निकर जाय जौ दम।

एइ बताबे तौ बिधना नें ऐसे आंग रचे,
मिलें चैन सें रवौ कैत है जा 'बेचैन' कलम।

—१४५, कोतवाली बाजार, जबलपुर-२

हम फिर भी हार गए / रमेश चौरसिया 'आकुल'

हर दुखिया का हृदय टटोला,
मन का अंतर्द्वन्द्व न खोला,
होंठ सीं लिए शब्द न बोला,
सुधा मानकर गले गरल का घूंट उतार गए।
हम फिर भी हार गए।।
बिछुड़ गईं मुस्कानें अपनी, सपनों के बसन्त बौराए।
चौमासी संकल्प घरौंदें, रोज बनाए, रोज मिटाए।।
गीला है आँखों का आँगन,
ये कैसा बरसा है सावन,
लहराता है काँटों का वन,
दर्दों के पनघट से गागर भर सौ बार गए।
हम फिर भी हार गए।।
मजबूरी के बाजारों में, बिकतीं हैं हर रोज मुश्किलें।
चंद सुखों को ललचाए हम, मच गईं चारों ओर हलचलें।।
आहों के अनुबन्ध भर दिए,
श्रम के पूरे छन्द कर दिए,
द्वार खुशी के बन्द कर दिए,
भूख पोटरी में बाँधे अपनों के द्वार गए।
हम फिर भी हार गए।।
मुक्त गगन में उड़ते उड़ते, बिखर गए नीड़ों के तिनके।
वही काटते डाल हमारी बागडोर हाथों में जिनके।।
झूठों का उत्थान हो गया,
सच का कत्ले आम 'हो' गया,
बगला भगत महान हो गया,
अंधियारों को दीपक देने थे उस पार गए।
हम फिर भी हार गए।।

व्याख्याता, शा० उ० मा० वि० लोड़ी (छतरपुर)

फादर कामिल बुल्के और बुंदेलखण्ड के रामतीर्थ

● श्रीकृष्ण चौरसिया

कुछ वर्ष पूर्व, लखनऊ में आयोजित 'रामायण सम्मेलन' में हाल में दिवंगत विख्यात मानस विद्वान एवं हिन्दी प्रेमी, फादर कामिल बुल्के से प्रदेश पुरातत्त्व संग्रहालय क्यूरेटर श्री शैलेन्द्र रस्तोगी के सौजन्य से भेंट होने का सौभाग्य मिला था। परिचय में मेरी चन्देल इतिहास एवं बुन्देली क्षेत्र के पर्यटन विकास में रुचि तथा ऐतिहासिक नगर महोबा में निवास होने का उल्लेख आने पर फादर बुल्के ने उत्सुकतापूर्वक चित्रकूट धाम से महोबा की दूरी व यहाँ की भौगोलिक स्थिति, पहाड़ एवं वन आदि पर प्रश्न किये। उन्हें विदेशी जान कर भ्रमवश मैं उत्तर अंग्रेजी में दे गया। एक विशिष्ट मुस्कराहट के साथ उन्होंने बड़े स्नेह से हिन्दी में ही बात करने का आग्रह करते हुये कहा—'भाई चन्देलों से बहुत पहले, त्रेता युग के इतिहास पर भी ध्यान दो, जब मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम ने पवित्र चित्रकूट में अपने बनवास काल के लगभग १२ वर्ष व्यतीत करते हुये बुन्देलखण्ड के अनेक मनोरम स्थलों, ऋषियों की तपोभूमि आदि का व्यापक परिभ्रमण किया था। आप सबको अपनी पावन भूमि में उनके बन-विचरण से सम्बद्ध ज्ञात-अज्ञात स्थलों की खोज करनी चाहिये। स्थानीय जनश्रुतियाँ एवं उपलब्ध चिह्नावशेष इसके आधार बन सकते हैं। ऐसे सभी स्थानों को प्रसिद्धि देने व पर्यटन की दृष्टि से उन्हें विकसित करने के प्रयास किये जाने चाहिये।'

प्रसंगवश, यह प्रश्न उठने पर कि अभी तो अधिकांश पुरातत्ववेत्ता 'रामकथा' की ऐतिहासिकता व प्रमाणिकता के प्रति शंकालु हैं एवं इसे आदि कवि बाल्मीकि की मात्र कल्पना मानते हैं, फादर ने मार्मिक स्वर में कहा—'भाई, पुरातत्व के विद्वानों को अपना काम करने दो। अपने देश व समाज के नैतिक मापदण्ड एवं आदर्शों का आधार तो राम कथा है। अखिल विश्व एवं समस्त मानवता के लिये राम कथा ही सर्वोतम प्रेरणा स्रोत है। इस गौरवमय गाथा को श्रद्धा एवं विश्वास से मानना है। इस पर सन्देह या तर्क क्या करना?' फादर बुल्के यह सब जब भावावेश में कह रहे थे, तब लगा कि विदेशी काया में भारतीय आत्मा के दर्शन हो रहे हैं।

आगे, जब उन्हें बुन्देली क्षेत्र के तब तक ज्ञात श्री राम के बनवासी जीवन से सम्बद्ध स्थलों, चिन्हावशेषों यथा :—ग्राम सिंहपुर (रगौली) के समीप उर्मिला नदी स्थित 'चरणपादुका शिला', महोबा के गोरखगिरि (गोखार पहाड़) की 'सीता रसोई गुफा' व 'रामकुण्ड', भगवान शंकर से सम्बद्ध कालिंजर पर्वत तथा जटाशंकर आदि स्थानों का परिचय दिया, तो वे भाव-विह्वल हो गये और आवाहन किया कि रामकथा से जुड़े ऐसे सभी स्थानों को 'तीर्थ स्थलों' की भांति मान्यता दी जाये तथा पर्यटन विभाग से इनके विकास हेतु विशेष अनुरोध किया जाये।

रामभक्त कामिल बुल्के की उक्त प्रेरणा एवं आशीर्वाद का अनुकूल परिणाम हुआ है। मध्य-प्रदेश पर्यटन विभाग के माध्यम से की गई प्रार्थना पर लोक निर्माण विभाग ने ग्राम रैगोली के पास खजुराहो-महोबा मार्ग के डुमरा तिराहे से चरणपादुका को एक उपमार्ग से सम्बन्ध करने का निश्चय किया है। उल्लेखनीय है कि वर्ष १९३१ में ब्रिटिश शासन-काल में वहाँ एक बर्बर गोलीकाण्ड भी हुआ था और चरणपादुका के समीप एक 'शहीद स्मारक' निर्माण की भी योजना है। कालिंजर को सम्बद्ध करने हेतु सतना-चित्रकूट मार्ग के ग्राम मझगवां से पश्चिम दिशा में केन नदी पार चन्दला तक पक्के मार्ग निर्माण का प्रस्ताव है ताकि उत्तर से सड़क मार्ग से आने वाले पर्यटक एक ही चक्र में महोबा, खजुराहो, कालिंजर व चित्रकूट धाम तथा आगे प्रयाग तक की यात्रा न्यूनतम समय में सुगमता से कर सकें। यहाँ, महोबा-स्थित पवित्र गोखार पहाड़ी एवं अन्य पुरावशेषों तक पहुँचने हेतु सार्वजनिक निर्माण विभाग ने एक उपमार्ग निर्मित करने की कृपा की है व उत्तर प्रदेश पर्यटन एवं जिला प्रशासन हमीरपुर उक्त पहाड़ी को वृक्षारोपण आदि द्वारा विकसित करने जा रहा है।

आज जबकि रामकथा के अनन्य भक्त, मानस-मर्मज्ञ एवं कर्मयोगी फादर कामिल बुल्के पार्थिव रूप से हमारे बीच से विदा हो गये हैं, उन्हें अपनी अश्रुपूरित श्रद्धांजलि अर्पित करते हुये हम बुन्देलवासियों का कर्त्तव्य है कि उनकी आकांक्षाओं के अनुरूप इस क्षेत्र के भगवान राम से सम्बद्ध सभी चिह्नावशेषों की प्रमाणिकता से खोज कर उन्हें प्रकाश में लायें तथा उनके विकास हेतु सतत प्रयत्नशील रहें।

—मंत्री, बुंदेलखण्ड विकास समिति,
हमीरपुर

कहानी

सुधियों के खण्डहर

● प्रीता व्यास

शुभा के पापा रिटायर हो चुके थे। जिम्मेदारियाँ भी सब पूरी हो चुकीं थीं। उम्र के शेष दिन हमने घर पर बिताने का निश्चय किया था और तैयारी करके भोपाल आ गए, उसी घर में जहाँ शुभा के पापा का बचपन बीता था और जहाँ मैं भी अपने अनदेखे सपनों को लिए आई थी, नई-नई दुलहिन बनकर। इस घर की एक-एक ईंट से गहरे तक जुड़ी है हमारी भावनायें और इसीलिए हमने चुना है इसे, आखिरी पड़ाव के लिए।

जाड़ों की कुनकुनी धूप में छत पर बैठी मैं आस-पास बन गयी नई ऊंची-ऊंची इमारतों को देख रही थी। कितना बदल गया भोपाल तब से अब तक ? उन इमारतों पर से फिसलती हुई दृष्टि सामने के खण्डहर होते मकान पर आकर टिक गई। एक हूक सी उठी मन में, एक असह्य सी वेदना छा गई मस्तिष्क में, अन्दर का सब पिघलता मालूम हुआ। वहाँ से निगाहें हटा लीं मैंने और दूसरी ओर देखने लगी, शायद मन को बहलाने के लिए। मैं विगत को याद नहीं करना चाहती थी, पर वह था कि जितना मैं उससे दूर भागती थी, उतना ही और याद आता था।

मैं, उन दिनों, नई-नई आई थी यहाँ-शादी के बाद, तब मुझसे मिलने आने वालों में एक कमल भी थी। इसी सामने वाले मकान में रहती थी वह। मुझे बहुत अच्छी लगती थी। शान्त, सौम्य, सरल और आकर्षक। उसके गोरे-गोरे चेहरे से कितनी शान्ति बरसती थी, बता सकना मेरे बूते के बाहर है। कुछ था उसमें ऐसा, जो सामने वाले को अपनी ओर सहज आकृष्ट कर लेता था। धीरे-धीरे मेरे करीब आती गई वह और तब बातों के दौरान मुझे मालूम चला कि अन्दर से कितनी टूटी है वह। एक दिन कहा था उसने —'किसी के चेहरे पर थोड़े ही लिखा होता है रानू कि कितना टूटा हुआ है वो, दरारें तो बस मन पर होतीं हैं। वहाँ देख सकी तो देखो—अनगिनत दरारें हैं वहाँ।' अपनी आँखों में भर आये आंसुओं को पोंछ कर बोली थी वह—'मैं अपने माता-पिता की इकलौती लड़की थी। खूब लाड़-प्यार में

पली, बड़ी हुई। आज से तीन साल पहले संदीप से मेरी शादी हुई थी। यहाँ भी सबका खूब प्यार मिला मुझे। सब कुछ था मेरे पास—अच्छा घर, सुन्दर पति, सबका स्नेह, इससे ज्यादा और चाहिए भी क्या था मुझे ? अपने भाग्य से मैं सन्तुष्ट थी। मुझे जरा भी आभास नहीं हुआ कि ऐसी बर्फीली आंधी भी मेरे जीवन में आने वाली है, जो बसंत को हमेशा के लिए छीन लेगी मुझसे और मैं मन की ऊबड़-खाबड़ भूमि पर जमी बर्फ की पर्तों को अपनी सर्द होती उँगलियों से उखाड़-उखाड़ कर ढूंढती ही रह जाऊँगी—अपना कोई अंकुराता स्वप्न, कोई नन्हा मुस्कुराता गुलाब।'

'शादी हुए चार-पाँच महीने हुए थे, पन्द्रह दिसम्बर था शायद उस दिन। संदीप ने कहा कि उन्हें अपने मित्र की शादी में कानपुर जाना है तीन दिन के लिए, अपना सामान खुद लगाया उन्होंने और रात की ट्रेन से चले गए। तब से आज तक वापस नहीं आए। कहाँ-कहाँ न ढूंढा उन्हें, मिले ही नहीं।'

जाते समय एक पत्र छोड़ गए थे माँ के नाम, जो उनके जाने के दो हफ्ते बाद उनकी एक किताब में रखा मिला मुझे। पत्र क्या था, बस एक लाइन थी—'मैं अपनी मरजी से जा रहा हूँ। लौटूंगा नहीं, आप लोग ढूंढना मत। ढूंढ लिया, तब भी वापस नहीं आऊँगा।' मुझे तो मालूम नहीं क्या कारण है इसके पीछे। माताजी, बाबूजी और इनके बड़े भाई साहब सब यही कहते हैं कि कारण उन्हें मालूम नहीं। जब भी सोचती हूँ—क्यों ऐसा किया उन्होंने ? तो लगता है, जैसे इसमें गलती उनकी नहीं मेरे भाग्य की है। मेरे भाग्य में ही घुट-घुट कर जीना लिखा होगा, तब किसी का इसमें क्या दोष !

'लगता है जैसे किसी ऐसे रास्ते पर चल पड़ी है जिन्दगी जिसकी कोई मंजिल नहीं। बस खामोश चलते रहो, जब तक थक कर गिर न पड़ो—कभी न उठ सकने के लिए। जाने क्या-क्या नहीं कहा करते हैं लोग मेरे लिए.... ठीक ही तो कहते हैं—भले घरों पर उँगली उठाने के मौके बार-बार तो मिलते नहीं। मौका मिला है उन्हें, तो वे तो कहेंगे ही। वह तो माताजी-बाबूजी हैं, जिनके स्नेह की बदौलत मैं इन तमाम बातों को सह पाने की शक्ति जुटा पाई हूँ।'

'मुझे तो अब जीवन बेमानी लगा है, लेकिन इन तमाम निराशाओं के बावजूद भी कोई मरीचिका है, जो जीने को मजबूर करती है—आज नहीं तो कल-लौटेंगे, जरूर लौटेंगे। मन में पाल रखी उनके लौटने की भ्रान्ति जाने कब तक और जाने क्या-क्या सहने को मजबूर करेगी मुझे ? मैं रोकती नहीं उन्हें अगर जाना ही था तो, पर कम से कम मेरी गलती तो बता जाते, मेरे

मन को तो शान्ति रहती। हर अरमान पर लगता है, जैसे कफन डाल दिया गया है। उस कफन के नीचे दबे मेरे वे मासूम सपने कभी जी पायेंगे, अब उम्मीद नहीं। लेकिन···लेकिन सच रानू बहुत रुलाते हैं मुझे, ये मेरे मरे हुए सपने। जब-जब मैं उस कफन को जरा सा हटाकर अपने मरे हुए सपनों का मासूम चेहरा देखती हूँ—एक प्रश्न मन को मथने लगता है—उन्होंने क्यों किया ऐसा? क्यों? एक बार भी नहीं सोचा क्या निर्णय लेने से पहले मेरे बारे में? इतनी बुरी तो नहीं मैं, जितनी निर्दयता से ठुकराई गई? खैर छोड़ो, मैं भी क्या लेकर बैठ गई। वैसे तुम्हारे आगे रो ली तो दुख थोड़ा हल्का हो गया।'

मैं उसकी बातें सुनते-सुनते अन्दर तक जैसे हिल गई थी। कैसे सहती होगी कमल?—सोचा था मैंने। कुछ देर बैठे रहने के बाद लौट आई थी मैं, पर मन में उसकी कही बातें घूमती रही थीं कई दिन तक। शुभा के पापा की पोस्टिंग उन दिनों इन्दौर में थी, इसलिये मुझे कुछ समय बाद भोपाल छोड़ना पड़ा। कमल भी छूट गई उसी के साथ।

दो साल बाद इनके छोटे भाई की शादी में आना पड़ा था भोपाल, तब मिली थी वह। एकदम पहले सी ही, वही दीप्तिमय रूप लिए। शुभा साल भर की थी तब। शादी की व्यस्तताओं में मैं शुभा की ओर ज्यादा ध्यान नहीं दे पाती थी, तब कमल ही उसका सारा काम करती थी। शुभा भी उन पन्द्रह दिनों में बहुत हिल गई थी उससे। वापस जाने वाले दिन बहुत रोई थी शुभा। कमल भी रोई थी। धीमे स्वर में आँसू पीते हुए कहा था उसने—'रानू ऐसी ही एक प्यारी सी बच्ची मेरे सपनों में भी थी कहीं पर, वह तो वहीं दफन हो गई, उन्हीं सपनों में।····वह बर्फीली आँधी सब कुछ कितनी खामोशी से तबाह कर गई मुझे। अभी कुछ दिन पहले माँ और पिता जी आए थे, दुबारा शादी के लिए बात करने। माँ कह रही थीं—यूँ आखिर कब तक इन्तजार करती रहोगी? माताजी-बाबूजी, सब लोग यही चाहते हैं कि मैं उनके बारे में सोचना छोड़ दूँ, उनका इन्तजार छोड़ दूँ—फिर नए सिरे से शुरू कर लूँ जिन्दगी, लेकिन रानू तुम्हीं बताओ कैसे हो सकता है ऐसा? कम से कम मुझमें इतना साहस नहीं। ये और बात है कि वो मेरे न बन सकें, पर मैं तो उनकी हो चुकी न? फिर कैसे किसी और की कल्पना करूँ? एक भारतीय नारी कभी करती है ऐसा? मैंने तो कह दिया था कि मैं अब शादी नहीं करूँगी, मैं आखिरी-साँस तक इन्तजार करूँगी उनका। अच्छा रानू तुम्हीं बताओ गलत कहा मैंने? अपनी रोजी-रोटी के लिये तो एक स्कूल में शिक्षण

का काम मिल ही गया है। यहाँ माताजी-बाबूजी हैं, उनके स्नेह की छाया में, उनकी सेवा में ही गुजार दूँगी जिन्दगी। रानू, कभी तो आयेंगे न वो? उन्हें क्या कमी न लगता होगा कि उन्होंने जो किया है, कहीं गलत भी है। मेरे लिये क्या कभी न सोचते होंगे? तू देखना रानू, वो लौट आयेंगे एक दिन।'

मैं भीगे मन से लौट आई थी। शुभा के नन्हे मस्तिष्क में कमल मौसी बहुत गहरे बस गई थी। इन्दौर वापस आकर भी वह सारा दिन उन्हीं का नाम रटती रहती थी। उसके काम में मुझसे जरा सी गल्ती हो जाए, तो यही कहती थी—'आप तो ऐसे ही कर देती हो मम्मी, कमल मौसी तो कित्ते प्यार से करतीं थी मेरा काम, डाँटती भी नहीं थीं।'

वक्त गुजरता गया। हमारी छोटी सी बगिया में एक नन्हा सा फूल और खिला—शुभा के बाद—सचिन। मैं अपनी उपलब्धियों को सहेजने में व्यस्त हो गई और कमल? वह शायद अपनी ही मरीचिका में भटकती रही।

करीब दस साल बाद, एक बार फिर भोपाल आई थी मैं, तब पता चला था कि कमल के सास-ससुर भी नहीं रहे। उसके जेठ उन दिनों दिल्ली में थे, अपने परिवार के साथ। छः कमरों के उस बड़े मकान में अकेली बची थी कमल। पहली बार मुझे टूटी हुई लगी वह, बहुत दुबली हो गई थी। तब कहा था उसने—'दिन भर तो किसी न किसी काम में उलझी रहती हूँ, पर रात काटे नहीं कटती। रह-रह कर सब कुछ याद आता है···जाने क्या है जो मरने नहीं देता। अब बचा ही क्या है? सारी उम्मीदें धीरे-धीरे राख हो चली हैं। माताजी-बाबूजी थे, तो मन बहला रहता था, अब तो घर जैसे खाने को दौड़ता है। मुझे आश्चर्य होता है रानू अपने पर, पन्द्रह साल हो गए, इस दर्द को पीते-पीते, पर आज तक मैं जिन्दा हूँ।·मैं पागल क्यों न हो गई? मैं मर क्यों न गई? क्यों सह रही हूँ मैं?···ये शायद मेरी यही मरीचिका है रानू जो मरने नहीं देती मुझे—आज नहीं आए तो क्या कल जरूर आयेंगे।

अपनी टूटती उम्मीद को लिए इन्तजार करती रहती वह। आज से दस-ग्यारह साल पहले, शुभा की शादी के लिए यहाँ आई थी, तब पता चला था कि कमल को दमा हो गया है। सोचा देख आऊँ चलकर और जून की उस तपती दोपहर को कमल के घर की ओर चल पड़ी थी मैं। कच्चे आँगन में, नीम के पेड़ तले झोल खाई खाट पर लेटी थी वह। मुझे देखा तो हड़बड़ा के उठ बैठी और लगभग दौड़ कर लिपट गई मुझसे। पल भर यूँ ही खड़े रहे हम। सुधि आई, तब वहीं उसी खाट पर बैठ गए हम दोनों। अरसे बाद

मिलने की खुशी हमारी आंखों में आंसू बनकर छलक आई थी। एक दूसरे को कुछ क्षण यूं ही डबडबायी आंखों से देखते रहे हम। मुंह से बोल ही नहीं फूटे। तभी ध्यान से देखा था उसे मैंने—एकदम दुबली हो गई थी। उसका गोरा रंग जैसे झुलस गया था, काले घुंघराले बालों पर कहीं-कहीं सफेद रंग ने भी अपना आधिपत्य जमा लिया था, हाथों-पैरों और चेहरे पर हल्की भी झुर्रियां भी दिख रही थी। हालांकि उम्र का एक लम्बा फासला मैं भी तय कर चुकी थी और ढलती उम्र के लक्षण मुझमें भी दिखाई देने लगे थे, पर वह उम्र से कुछ ज्यादा बूढ़ी लगी मुझे।

'कैसी हो कमल ? मैंने सुना तुम्हारी तबियत ठीक नहीं है ?' मैंने बात शुरू की थी।

'सब ठीक है रानू उम्र कट गई—अब क्या ?—कितने दिन की है अब जिन्दगी।'

'तुम कैसी हो ?'

'ठीक हूं।'

'घर पर सब ठीक है ?'

'हां।'

'यहां कब आई थी ?'

'कल रात। तुम्हारी शुभा की शादी थी, उसकी दादी चाहती थी कि शादी घर से ही हो, सो उसी के लिए आई थी--इन्तजाम करने।'

'अरे ! शुभा इतनी बड़ी हो गई। उसे तो कितना खिलाया है मैंने, कैसी प्यारी थी गुड़िया जैसे।'—गड्ढे में धंसी उसकी आंखों में गुजरे दिन तैर गए थे शायद।

'कब की है शादी !'

'इसी सत्तरह की।'

'तैयारी हो गई ? अब तो कुल हफ्ता भर बचा है न ?'

'हां काफी कुछ तैय्यारी हो गई।'

'मेरे लिए काम बताना, आ जाऊंगी।'

'तुम्हारी तबियत तो ठीक है नहीं, कैसे कुछ करोगी तुम ?'

'मेरी शुभा बेटी की शादी है, और मैं काम न करूं ? ऐसा कैसे होगा रानू ? इतनी बीमार नहीं हूं मैं।'

मेरे लाख मना करने पर भी वह शादी का सारा काम करवाती रही थी। पल यहां तो पल वहां। अपने स्वास्थ्य की कोई चिन्ता नहीं रही थी उसे।

लगता था जैसे सारी जिम्मेदारी उसी की हो। बारात आई धूमधाम से टीका हुआ और फिर सारी रात शादी की रस्में चलती रहीं। उस पूरे समय कमल दिखाई नहीं दी। व्यस्तता इतनी बढ़ गई थी कि मैं ये भी मालूम न कर सकी कि कमल नहीं दिख रही बड़ी देर से तो गई कहां ? दूसरे दिन सुबह विदा के समय दिखाई दी थी जरा देर को। शुभा को आशीर्वाद देने आई थी। एकदम थकी-थकी लग रही थी। शुभा की विदा के बाद मैं, मेहमानों की—जो जाने की जल्दी कर रहे थे, तैय्यारी में लग गई थी। तभी सचिन घबराया सा आकर बोला—"मम्मी, कमल मौसी की तबियत ठीक नहीं है, आपको बुला रही है, 'प्लीज जल्दी चलिए।" मैं सारे काम छोड़कर लगभग दौड़ती सी पहुंची वहां। उसी नीम के पेड़ के नीचे उसी झोल खाई खाट पर लेटी थी वह, जिस पर दस दिन पहले मिली थी मुझे।

"कमल--कमल क्या हुआ तुझे ?"—मैं अन्दर तक बिल्कुल कांप सी रही थी।

"शुभा गई ?" अपनी बंद पलकों को खोलते हुए बुझते स्वर में पूछा था उसने। "हां"।—आंखों में भर आए आंसुओं को रोकने का निरर्थक प्रयास करते हुए कहा मैंने—"तुझे मना किया था न कमल ज्यादा काम करने को ? अपने स्वास्थ्य को भी तो कुछ सोचा होता।"

"रानू"--मेरी हथेली को अपनी दोनों हथेलियों के बीच रख लिया था उसने।—"रानू तू नहीं जानती मैं शुभा को कितना चाहती हूं, अपनी ही बेटी जैसा माना है मैंने उसे हमेशा। उसे अच्छा घर मिल गया इसकी जितनी खुशी तुझे है, उससे कहीं अधिक मुझे है। ईश्वर··ईश्वर उसे जिन्दगी की सारी खुशियां दे।" उसे तेज खांसी उठी, जो बड़ी मुश्किल से शान्त हुई। मेरे मना करने के बाद भी बोलती रही थी वह—"तुझे तो पता न होगा रानू--आज से चौबीस साल पहले आज के ही दिन मेरी भी विदा हुई थी।····मैं भी अपने ढेर सारे पहले-पहले सपनों को लेकर आई थी इस घर में जो—जो पूरे न हो सके।···चौबीस साल हो गए मुझे···इन्तजार करते एक मधुमय बसंत का पर····पर मेरे जीवन से पतझड़ जाता ही नहीं। और कितने दिन इन्तजार करूं ?····अब तो सारा साहरा चुक गया मेरी। आज····आज मेरी भी विदा कर दे रानू····ऊपर की दुनियां के लिए। इस जनम तो कुछ न पा सकी····शायद···शायद अगले जनम···कुछ पा सकूं।"

"ऐसा न कह कमल, तू ठीक हो जायेगी।" मेरी रुलाई फूट पड़ी थी। "नहीं रानू नहीं····अब और नहीं जीना चाहती मैं····मेरी रानू···मेरी बहन

अब····और दुआ न दे जिन्दगी की। जैसे····आज शुभा को····शुभा को सजाया था न ?····वैसे ही····वैसे ही सजा के बिदा कर दे मेरी भी, जिससे अगले जनम कुछ तो पा सकूँ····कुछ तो पा सकूँ।''

और, कमल इस दुनियाँ से जा चुकी थी। मैं किंकर्तव्यविमूढ़ खड़ी थी, हाथ-पाँव जैसे सुन्न हो गए थे।

कैसा दिन था, सुबह शुभा की डोली उठी थी, शाम को कमल की मिट्टी। कमल ने जैसा कहा था, मैंने वैसा ही सजाया था उसे। चार कंधों की पालकी पर कमल जा रही थी और मैं चौखट से टिकी उसे जाते देख रही थी, भारी मन से, भोगी पलकों से कैसी बिदाई थी वह ?

सूरज बादलों की घनी पर्तों में कहीं छुप गया। ठंडी हवा से कंपकपी लगने लगी। यूँ भी शाम होने को थी। खण्डहर होते उस मकान को बुझी-बुझी आँखों से फिर एक बार देखा मैंने और अतीत की उन यादों को मन में ही छुपाकर सीढ़ियाँ उतरने लगी।

--नरसिंहगढ़पुरवा, छतरपुर।

कहानी

अपनों के बीच

● वन्दना अवस्थी

आज सोमू वापस चला गया है। मन अपनी पराजय पर कसैला हो आया है। सचमुच ही आज घर में अच्छा नहीं लग रहा। बगल के कमरे में से नीलू और शाही के ठहाके सुनाई दे रहे हैं, जो मुझे अन्दर तक अपमानित कर रहे हैं। मुझे लग रहा है कि ये ठहाके, सिर्फ मुझे जलाने के लिये और अधिक पराजित करने के लिये लगाये जा रहे हैं।

वैसे सच कहूँ, तो आज सोमू के जाने के बाद जरूर मैं दुःखी हो गई हूँ, वरना कल तक तो मैं भी नीलू शाही और इनके विचारों से लगभग लगभग सहमत हो चली थी। लेकिन आज, आज बेहद नर्वस हो गई हूँ। एकदम अकेली जो पड़ गई। कितनी खुश थी मैं सोमू को लाकर। लग रहा था कि आज सच्चे अर्थों में समाज सेवा कर रही हूँ मैं।

पता नहीं किस घड़ी में सोमू मुझे मिला था। मैं बाजार शॉपिंग करने गई थी और वहीं गजरे बेचता सोमू मुझे मिला था। वैसे तो कई बच्चे इस तरह कुछ न कुछ बेचते हुए मिलते ही रहते हैं, लेकिन सोमू के चेहरे और बातों से इतना भोलापन झलक रहा था कि मैं उसकी ओर आकर्षित हुए बिना न रह सकी। बड़ी देर तक उससे बातें करती रही। यह मालूम होने पर कि वह अकेला ही फुटपाथ पर रहता है अचानक ही मैं कह उठी--'सोमू मेरे घर चलेगा ? मेरे भी दो बच्चे हैं। बड़े जरूर हो गये हैं, पर इसकी क्या।' और सोमू भी थोड़े विचार के बाद मेरे साथ हो लिया था। कहने को तो कह दिया सोमू से, लेकिन अब मैं ईश्वर से प्रार्थना कर रही थी कि वह मुझे घर के लोगों से सामना करने की शक्ति दे। जानती थी कि सोमू के विषय में लिये गये मेरे निर्णय को सुनकर सभी हंगामा बरपा करेंगे। लेकिन फिर अपने को मजबूत कर मैं सोमू को घर ले ही आई।

नीलू और शाही एक-दूसरे के सामना देखने में इतने व्यस्त थे कि उन्होंने सोमू की ओर कोई ध्यान ही नहीं दिया। मेरे बताने पर उन लोगों ने सोमू को देखकर इतना बुरा मुंह बनाया कि मैं हैरान हो गई लेकिन उस वक्त

मैंने उन दोनों की ओर बेहद निश्चिन्त भाव से देखा, जिससे शायद उन लोगों ने उस वक्त मुझसे कुछ कहना उचित नहीं समझा और अपने कमरे में जाकर सलाह-मशविरा करने लगे। इस बीच मैं बराबर उन दोनों से ऐसा व्यवहार करती रही जिससे उन्हें लेशमात्र भी यह अनुभव न हो पाये कि मेरे मन में थोड़ी-सी भी कमजोरी है, सोमू को लेकर। सोमू को मैंने शाही के कपड़े, जो शाही को काफी छोटे थे, पहनने के लिये दिये। नहाने के बाद अब सोमू भी काफी फ्रेश लग रहा था।

मैं सोच रही थी कि इन बच्चों से तो निपट ली, अब अनि भी जल्दी ही आ जाये तो मैं उन्हें सारी कथा सुनाकर निश्चिन्त हो जाऊँ। वैसे भी अनि की ओर से मुझे तनिक भी डर नहीं था। अनि कभी भी मेरे कामों में बाधक नहीं बने हैं, बल्कि उन्होंने हमेशा मेरा सहयोग ही किया है। लेकिन ये बच्चे? जब तक छोटे थे, तो मेरे इशारों पर नाचते थे, लेकिन अब तो मुझे इनसे ही डर लगता है। वैसे भी बच्चे जब बड़े हो जाते हैं, तो मित्रवत् हो जाते हैं। लेकिन बच्चे कितने ही बड़े क्यों न हो जायें, अपनों के अलावा उनका प्यार किसी के साथ विभाजित होना उन्हें गवारा नहीं होता। और निश्चित रूप से यही बात हम लोगों के साथ भी हुई।

"क्या बात है? आज देवी जी इतनी विचार निमग्न कैसे बैठी हैं?" अनि आ गये थे। मैं उठी। थोड़ी ही देर बाद हम चाय पी रहे थे। बच्चे घर में थे नहीं। मैंने अपने आस-पास देखा। सोमू भी नहीं दिखाई दिया, तो मैंने उसके सम्बन्ध में बताया। पूरी बात शांति से सुनने के बाद अनि ने स्पष्ट शब्दों में कहा—"देखो मधु, तुम सोमू को घर लाईं, बहुत अच्छा किया। मैं तुम्हारी मन:स्थिति को अच्छी तरह समझ रहा हूँ। लेकिन मधु, इस तरह के सम्बंधों को निभाना बड़ा कठिन होता है। भावुकता में लिया गया कोई भी निर्णय सही होता है, ऐसा मैं नहीं मानता। और फिर हमारी आर्थिक स्थिति भी तो वैसे हम चारों को ही आराम से रहने की अनुमति देती है। ऐसे में किसी नये सदस्य को एडजस्ट कर पाना थोड़ा मुश्किल ही होगा। मेरी बातों से तुम यह मत समझ लेना कि मैं तुम्हारे विरुद्ध हूँ। मैं तो अपनी बात कह रहा था। और फिर यदि तुम उसे एडजस्ट कर सकती हो, तो मुझे क्या एतराज? मैं तो तुम्हारे साथ ही हूँ बस।" अनि की बात सुनकर जहाँ एक ओर मैं मानसिक रूप से शान्त हुई, वहीं दूसरी ओर अनि के शब्द मेरे मस्तिष्क में हलचल पैदा कर रहे थे। अपने को इतना कमजोर देख, सचमुच ही मुझे बड़ी ग्लानि हो रही थी।

दूसरे दिन से ही बच्चों ने सोमू का मजाक बनाना शुरू कर दिया था। यह सब पूर्वनियोजित था, मेरे ख्याल में। सुबह ही शाही ने बड़े अन्दाज में फिकरा कसा—'वाह! शाह जी का कुरता पहन कर सोमू मियाँ लखनऊ के नवाब बनने की कोशिश में हैं। लेकिन मियां इतना याद रखना कि उधार की नवाबी ज्यादा नहीं चलती। नीलू भी जोर से हँस पड़ी थी। चाय गैस पर उबलती ही छोड़कर मैं किचन से बाहर आ गई थी। कस कर डाँट दिया था दोनों को। ये भी मुझे आश्चर्य से देखने लगे थे। लेकिन उस वक्त सचमुच ही मुझे उन दोनों की बेहूदगी पर बड़ा गुस्सा आ रहा था। मेरे डाँटने पर भी दोनों ढिठाई से हँसते हुए अपने कमरे में चले गये थे। इस सारे काण्ड को देखकर, सोमू का मुँह इतना सा निकल आया था। उसी दिन मैं सोमू के एडमीशन के सिल-सिले में स्कूल भी गई। किस्मत अच्छी थी थोड़ा कहने-सुनने के बाद ही सोमू का एडमीशन छाठवीं में हो गया। एक छोटा सा टैस्ट ही लिया। प्रिंसिपल ने, वजह चाहे कुछ भी रही हो (वैसे शहर की मान्य संस्थाओं में इनकी पहुँच अच्छी ही है)।

अब एक नये प्राणी का खर्च जोर-शोर से घर में चल पड़ा था। सोमू की किताबें, सोमू की यूनिफॉर्म, सोमू के कपड़े, हर वक्त सोमू का काम। अति हर चीज की बुरी होती है। यहाँ तक कि अति प्रेम भी मन में विपरीत भाव उत्पन्न कर देता है। और शायद मैं अधिकाधिक सहानुभूति दर्शाने, प्रेम लुटाने के चक्कर में घरवालों से कटने लगी थी। "मम्मी तो हर वक्त सोमू के कामों में व्यस्त रहती हैं।" हाँ, हम लोग तो जैसे कोई हैं ही नहीं। नीलू गुनगुनाई।' देखो नीलू, तुम लोग तो बड़े हो गये हो। और फिर ये तो तुम्हारा ही घर है। आखिर सोमू एक अनाथ लड़का है। जब उसकी माँ थी, तब वह भी पढ़ता ही था। उसे यहाँ के वातावरण में ढालने के लिये कुछ तो करना ही होगा और फिर.....।', 'क्या फिजूल बात करती तो ममी आखिर इतने अनाथ बच्चे पड़े हैं, उनमें से किसी एक का भला करने से क्या मिल जायेगा? और फिर सच तो यह है कि हम नहीं चाहते कि हमारे रहते हुए कोई और हमारा अधिकार छीने।' बड़ी गंभीर आवाज में शाही ने शर्ट को पैंट के अन्दर डालते हुए कहा। मैं चाहकर भी अपने अधूरे वाक्य को पूरा नहीं कर पाई। आज शाही को ऊपर से नीचे तक गौर से देखा—सचमुच ही बड़ा हो गया है शाही।

पिछले कुछ दिनों से, जब से सोमू आया है, हम तीनों में शाही और नीलू के बीच एक शीत युद्ध चल रहा है। अनि तटस्थ हैं। अनि सचमुच ही मजेदार हैं। जब मैं कुछ कहती हूँ, तो मेरी ओर हो जाते हैं, और जब बच्चे

घसीट लेते हैं, तो उनके हो जाते है। आज दोपहर के खाने के वक्त टेबुल पर मैंने सोमू का नाम शम्मी कर देने की इच्छा जाहिर की। सबका मूड अच्छा था, शायद मेरा प्रस्ताव करतल ध्वनि से पारित हुआ। और अब सोमू के ऊपर शम्मी का आवरण चढ़ा दिया गया। सोमू ने भी इसे स्वीकार किया (अस्वी-कार का प्रश्न ही कहाँ था ?)।

सोमू को लेकर हम सभी एक टेंशन में जी रहे थे। हम लोगों की सारी स्वच्छंदता गायब हो गई थी। पहले की तरह गूंजते हुए कह-कहे अब कम ही सुनाई देते थे। सोमू भी अब तक नॉर्मल नहीं हो पाया था। शाही और नीलू से तो वह बेहद कम बातचीत करता था। घर में बस मुझसे ही बोलता—बतियाता था। बच्चों से वह अधिक कैसे बोले ? ये बच्चे भी तो उसे फूटी आँखों नहीं देखते थे। अभी कल तो हद हो गई। सोमू शाही के कमरे में चला गया और बस शाही को इतने में ही गुस्सा आ गया, एक चाँटा और ढ़ेर सी गालियाँ उसने सोमू को दे डालीं। ये बात मेरी बरदाश्त से बाहर की थी। तेजी से शाही के कमरे में पहुँची, जितनी तेजी में शाही ने मारा था, उससे कहीं अधिक झन्नाटेदार थप्पड़ शाही के गाल पर पड़ा। नीलू शाही हतप्रभ मुझे देखते रह गये। मैं वापस किचन में पहुँच गई थी। वे दोनों भी अपने-अपने स्कूल, कॉलिज चले गये। लेकिन बात अभी खत्म नहीं हुई थी। शाम को इनके आने के बाद बाकायदा मीटिंग बुलाई गई। शाही और नीलू बढ़बढ़-कर अपना बचाव कर मुझे जाल में फँसाते जा रहे थे, जैसे सारा दोष मेरा ही था। अन्त में निर्णय हुआ कि मुझे शाही को नहीं मारना चाहिये था (लो, अब इतना भी अधिकार नहीं।)

घर का वातावरण अचानक ही बोझिल हो गया था। घर में सब इतने औपचारिक हो गये थे कि बस। और सोमू ? बेचारा बेहद निरीह था हम सबके बीच। उसकी समझ में हम सब के बीच दूरी पैदा करने का कारण वही था (ठीक ही था।) मैं भरसक नॉर्मल रहने की कोशिश करती लेकिन उस कोशिश में मैं और ज्यादा एबनॉर्मल हो जाती।

कल रात ही तो अनि ने सोमू को हॉस्टल में रखने का प्रस्ताव रखा था। बात मेरे गले नहीं उतरी थी, लेकिन मैं चुप थी। हालांकि सोमू आस-पास कहीं नहीं था, लेकिन उसने यह बात सुनी ही होगी, तभी न आज सुबह ही चला गया।

सुबह नौ बजे के लगभग कह गया था कि अपने एक दोस्त के यहाँ जा रहा हूँ। फिर साढ़े नौ पर उसके दोस्त ने आकर बताया कि 'सोमू मुझसे कह

गया है कि मैं जा रहा हूँ। मेरे बहुत पूछने पर भी उसने यह नहीं बताया कि वह कहाँ जा रहा है। उसके जाते ही मैं यहाँ आपको बताने आया हूँ।' सुनकर लगा था कि जैसे किसी ने मेरे शरीर का सारा रक्त निचोड़ दिया हो। लेकिन बच्चों के चेहरे ऐसे खिल गये, जैसे छोटे बच्चों के जिन्हें मिट्टी में खेलने छोड़ दिया गया हो। वैसे यह कोई अनहोनी नहीं थी। ऐसा कुछ होगा, इसका पूर्वाभास हम सभी को शायद हो चला था। मैं एकदम अशक्त हो अपने कमरे में चली आई थी। शाही ने अनि को फोन पर बता दिया था कि सोमू चला गया है। प्रत्युत्तर मुझे नहीं मालूम, बस शाही के हँसने की आवाज सुनाई दी थी। मैं बेसुध-सी अपने पलंग पर पड़ी रही थी। दोपहर में नीलू ने आकर खाने को कहा, पर 'मुझे भूख नहीं है।' कह कर ही मैंने उसे चलता कर दिया। सोमू के जाने से अधिक दुःख मुझे अपनी पराजय पर था। एक अजीब सी शर्मिन्दगी भरा दुःख। कमरे से बाहर आने की इच्छा तक नहीं हो रही थी। मुझे नहीं मालूम कब शाम हुई, कब रात हो गई। सारा शरीर टूट रहा था। हल्का सा बुखार भी लग रहा था। माथे पर किसी के हाथ का स्पर्श पा आँखें खोलीं, अनि थे—"तुम्हें तो बुखार हो रहा है मधु। कोई टेबलेट ले लेतीं।' उस पर मैं बुदबुदाई थी—नहीं। ठीक हूँ ऐसे ही।' और अनि ने समझाने की टोन में कहा था—देखो कम, इस तरह से किसी भी बात के लिये परेशान होना कहाँ तक ठीक है ? फिर सोमू हमारा था ही कौन ? घर के लोग तक अपनी रिश्तेदारियाँ नहीं निभा पाते, फिर सोमू तो एकदक अपरि-चित लड़का था। उसके लिये इतना परेशान क्यों हुआ जाये। मैं चाहता, तो उसे खोज सकता था, लेकिन क्या फायदा ? मानता हूँ, कि तुम बेहद भावुक हो पर····खैर तुम आराम करो।' कह कर अनि खाना खाने चले गये थे। रात को अनि लेटने तैयारी कर रहे थे। अचानक ही मैं कही उठी—'सोमू शायद शम्मी के फ्रेम में फिट नहीं हो पाया। या हम लोग ही तस्वीर को सही फ्रेम नहीं दे पाये।'

'मधु, सभी कोई अपने परिवेश में रहना चाहते हैं। और फिर, सोमू कहीं बाहर नहीं गया है, वह तो अपनी जगह अपने लोगों के बीच ही गया है।' मैं चौक कर नाइट बल्ब की मद्धिम रोशनी में अनि के चेहरे को पढ़ने की कोशिश करने लगी, लेकिन वहाँ ठहरे हुए जल की तरह शांति बिखरी पड़ी थी।

—द्वारा श्री रामरतन अवस्थी
१/६ बिलहरी रोड, नौगाँव, म० प्र०

सारा भारत कवि बन गया होता

● धीरेन्द्र श्रीवास्तव

[जन्म-२० जुलाई, १९६५ ई०। सम्प्रति बी० एस-सी० प्रथम वर्ष का छात्र। इन्टर से काव्य-रचना प्रारम्भ।

"जीवन की विसंगतियों को लेकर जो भाव हृदय में उठते हैं, उन्हें कविता, कहानी, नाटक एवं व्यंग्य के रूप में कागज पर टांकने में शान्ति सी महसूस होती है और इसी शान्ति के अहसास के लिए कागज भरता रहता हूं।"]

मैं बैठता लिखने को कविता
अर्जित कर सकूं धन
एकाग्र करता मन
किन्तु बीमार मां की कराह
भंग कर देती मन में आते विचार।
पुनः करता लिखना प्रारम्भ
कि बापू की टिकी टूटी बैसाखियां
मजबूर कर देतीं सोचने को
इन्हें भी सुधरवाना है
अभी लिख सका था कविता का शीर्षक बेरोजगारी
कि सामने से गुज़र गई बड़ी बहन
लादे कुंआरेपन का वजन।
यह कोशिश भी बेकार
मैंने काटकर बेरोजगारी
लिखा 'दहेज'।
'दहेज' शीर्षक में जड़ने को सोचे कुछ शब्द
कि बीबी बिना शकर की चाय लिये खड़ी थी
फटे कपड़ों से झांकते उसके अंग

जिन पर था सिर्फ मेरा अधिकार
मगर पड़ोसी जैसी झांककर खिड़कियों से
जान लेते दूसरे के घर का भेद
सेंक लेते अपनी आंखें।
एक बार फिर 'दहेज' शीर्षक काट देना पड़ा
क्योंकि तभी पड़ोसी का रिकार्ड प्लेयर
चीख कर गा उठा
और मैं रो उठा बेबसी पर
टपक कर कुछ आंसू
मिटाने लगे कटे पिटे शीर्षक बेरोजगारी, दहेज
कहते हुए 'लिख कर भारत के हर गरीब की कविता'
कमाना चाहते हो अकेले-अकेले
यदि यह तुम्हारा दुखड़े रोना कविता होता
तो सारा भारत कब का कवि बन गया होता।

—बड़े मंदिर के पीछे, पठनऊ, राठ, हमीरपुर

बुंदेली कहानी

अनौखी बाजी

• मालती घोष

ऐसें ऐसें एक हते राजा भोज। एक दिना बे गये सिकार खेलने। दुपारी में वे एक पेड़े के तरें अपनो घोड़ा बांध के सुस्तान लगे, इतने में कोनँउ दूसरे राजा के कुंवर की बरात उतै सें निकरी। ऊ बरात में इला कानो हतो। बरातियन नें राज भोज खां देखो तो कान लगे कै कैसो नोतो लरका परो एइखां टीका के लानें लिवायें चलो। दूला के बाप नें भी सोची कै जे औरें ठीक आय कात। उननें राजा भोज के ऐंगर जाकें पूंछी कै काये जू अपुन कांके आव? हमाव एक काम सदा सकत होव तो सदा देव।

राजा भोज बोले—हम तो भौत दूर के आयें, अपुन को काम है। बरात, हमाये लाक इहै तो कर दैबी। वे बोले कै हमाये लरका की तवियस ठीक नइयां, सो तनक हमाये संगै चले चलो औ टीका करा देव। राजा भोज नें कई-हओ चलो चलिये।

बरात बिटिया वारे दुआरें पौंची। अच्छी तरां सें टीका भओ। सबनें कई-कुंवर तो भौतइ खबसूरत है। टीका करा कें राजा भोज डेरा में भग आये। जब चढ़ाये के बाद भांवरन की बात आई, तो राजा नें कई कै हमाये कुंवर खां टीका में नजर लग गई, सो बुखार चढ़ आवो, ईसें कटार सें भावरें परवा लेव। पै बिटिया वारे न माने। उननें कई कै सगुन स्यात को काम आय, विना कुंवर के भावरें नई पर सकतीं। राजा भोज खां भांवरन के लानें फिर सें मनाओ गओ। जैसें-तैसें बे राजी हो गये। भांवरें परीं, सब नेंगचार भये, तो पलकाचार को नेंग सोऊ राजा भोज के संगैई करा दओ गओ।

राजा भोज बड़े सवेरें चुपके सें जगे जीमें बेटी न जान पावै और उनकी फरिया पै एक दोहा लिख कें अपने दस्कत बना दये। फिर धीरे सें उठे और घोड़ा पै बैठकें अपने देस लौट आये। बेटी की जब आँख खुली, तो उनकी नजर फरिया पै लिखे दोहा पै परी। उननें उमै पढ़ो और नेंचें राजा भोज

की सही देखी सो वे सब समझ गई। उननें फरिया अपने बक्सा में जान सें सुटारी धरी और बात अपने मन में धर लई।

बरात खुसी-खुसी लौट गई, पै जब गौनो करावे के लानें आये तो बेटी ने किबवा दइ कै भांवरें जी के संगै परीं बिदा ओइके संगै छूहै। कुल बातें भई, पै चलौउन खां लौट जानें परो।

दिन बीते, बेटी कें कुंवर भये। कछू दिनन में जब वे तनक हुसयार हो आये, सो लरकन के संगै खेलन जान लगे। एक दिना लरका खेलत में कान लगे—दुहाई बाप की, दुहाई बाप की, तो सबके संगै कुंवर भी कान लगे। कौनऊ लरका नें कै रई कै तुमाये बाप कां हैं? कुंवर चुपचाप रै गये, पै उनें मन में भौतई बुरओ लगो। वे घरै आये और मताइ सें कान लगे कै हमाये पिता को नांव और पतो बताव, नइतर हम कटार मार कें मर जैबी। मताई नें भौत समझाओ। जब कैसउं न माने, तो उननें ओई फरिया निकार कें दै दई और सब हाल बता दओ।

कुंवर बोले कै अब तो हम अपने पिता जी सें मिलबे खां जैबी। सबनें खूब समझाओ कै तुम अबै छोटे हो, तनक और बड़े हो जाव, सो जइयो, पै कुंवर नें एक न मानी। एक अच्छो घोड़ा सजवाओ, ऊपै कछू मोहरें लादीं और घोड़ा पै बैठ निकल परे। चलत-चलत राजा भोज के राज में पौंचे। उनें एक अच्छो बगीचा दिखानों, तो ऊमें अपनो घोड़ा बांध कें सुस्तान लगे। इतने में राजा के इतै की मालिन आई। ऊनें कुंवर खां देखो, तो कान लगी कै बेटा तुम कां के आव, इतै सें चले जाव। जो राजा भोज को बगीचा आय।

कुंवर नें एक मुहर निकार कें मालिन खां दई और बोले—'माई हम परदेशी आयें, हमाये लानें खाना और घोड़ा खा दानो ल्यादेव, तो हम चले जैहैं।' मालिन सामान लै आई और बचे पइसा लौटाउन लगी, तो कुंवर नें कई–पइसन को का करनै? धरें राव, एक मोहर तो हम रोज खर्च करतइ हैं। मालिन मन में खुसी भई और बोली—बेटा इतें डर है। तुमें दो-चार दिना रानें होय तो हमाये घरै चलो। कुंवर के मन की भई बे ऊके घरै चले आये।

मालिन महाराज के बगीचा की देख रेख करत ती और दोई बेरां फूल माला रानी खां जू दैबे जात ती। सो रोज बा कुंवर सें राजा के इतै को हाल बताओ करत ती। ऊनें बताओ कै राजा रोज बड़े सबेरे बामन को मो देखकें उठत, फिर बे सवा मन सोनों दान करत। कुंवर नें मालिन सें पूंछी कै ऊ

बामन कौन आय, जी को मो माराज रोज देखत । मालिन नें कई कै ऊको घर तौ अपने घर के पछाईं है । बो तो रोज तीन बजे उठत, फिर नहा धोकें राजा कें जात ।

दूसरे दिन कुंवर तीन बजे उठे और ऊ बामन के पाछें-पाछें चले गये । जैसई बो हाड़े होन लागो, कुंवर नें पाछे सें गड़ई उठाई और भग कें मालिन के घर में घुस गये । जब ऊनें पानी लेंय की सोची, तौ हैरान रै गओ, उतै कऊं गड़ई न दिखानी । एँगर-पास पानी न हतो । नदिया तीन कोस परत ती । बिचारौ नदियै भगत गओ । इतै राजा बेर-बेर पूंछें—काये बामन आ गओ ? कुल बेरा गयें बामन आ पाओ । जब बामन पौंचो, तौ राजा उठे । फिर रोज के काम सें फारिग होकें बामन सें इतनी देर में आबे को कारन पूंछो । बामन नें हरात-हरात राजा सें गड़ई चोरी की सब बात बताई ।

राजा खां बड़ी चिंता लग गयी । बे दरबार में आये और मंत्रियन सें सलाय लयी । फिर पांच पान को बीरा धरवा कें कई गयी कै जो कोऊ चोर पकरै ऊको खजाने सें एक हजार रुपइया इनाम दओ जै है । दरबार में खुसर-पुसर होन लगी, बात सहर में फैल गयी । कुल बेरा हो गयी । जब बीरा कोऊ नें न उठाओ, तब चार नाऊ भइयन नें महाराज सें आकें मुजरा करो और कई कै हमओरें राज के चोर खां पकरबे के लानें बीरा उठाइत हैं । इत्तो कैकें बे ओरें चोर ढूंढ़ने के लानें चले ।

मालिन घरै आई, सो कुंवर सें सब हाल बताओ और बोली—'बेटा तुम न निकरियो, कऊं बायरें भौत धौचाल मचो ।' कुंवर बोले—'हमें का कनूनै मालिन, कछू होत राय ।'

मालिन चली गई, सो कुंवर ने तुरतईं एक पंडित को भेष बनाओ और पत्रा बगल में दाब कें उनईं नाउअन के दोरे सें निकरे । नाउअन की लुगाईं दोरे में बैठीं हतीं । पंडित जी खां देखो, सो बुलाकें पूंछन लगीं कै महाराज हमाये घर सें चोर पकरन गये, मिलहैं कै नईं ।

उनमें पत्रा खोलो और कान लगे कै चोर उन औरन खां तौ न मिलहैं, पै संजा की बेरां एइ घर में आहैं । वे औरें बोलीं कै हम कैसें का करबी, औरन जनी आंय । तौ पंडित जी नें कई कै पत्रा में तौ एइ निकरत कै तुमईं औरन खां पकनने परहै । तरकीब हम बतांय दइयत । चोर चार जने हैं, बे संजा की बेरां उगारे नंगे तुमाये घर में घुसत आहैं । तुम औरें अच्छे मोटे डंडा धर लेव सो जैसइ वे आवें सो दै चलियौ और जब लस्त हो जांय, सो जोरा सें बांद लइयौ । इत्तो कैकें वे उतै सें चले आये ।

कुंवर पत्रा दाबें फिर आगें चले, तौ गली में बेई नाउ मिल गये । उन्नें टीका मंदिरा लगांय पंडित जू खां देखो, तौ कान लगे कै महाराज पाय लागें, अपुन सें एक बात पूछनें है सो पत्रा में बिचार क बताव कै हम औरें चोर ढूड़बे निकरे हैं सो चोर कैसें मिलहैं । पंडित जी बोले—चोर तौ मिल सकत, पै एक जतन करनै परहै, बजार से भिलमा ल्याव और सबरी देय में लगा कें पानी में डुबकी लगाव । फिर हम एक और जतन बताबी । उनन नें बात मान लई । भिलमा लगा कें सबरे कपड़ा उतारे और नंगे होकें पानी में डूबे । पंडित जी नें कई कै जित्ती देर लौ डुबकी लगाहौ, चोर उत्तई जल्दी मिलहैं और जैसई उननें डुबकी साधी कुंवर नें उनके उन्ना-लत्ता उठाये और मालिन के घरै भग आये ।

जब वे उखरे, तौ न उतै उन्ना रांय न पंडित जू । बिचारे नंगे हते, सो अब न बायरें निकर सकत ते और न काउ सें कछू कै सकत ते । ऐसई डूबें डूबें जब कछु झुलपटो हो आओ, तौ वे पानी से निकरे सीधे घर खां भगे । घरै तो लुगाईं डंडा धरें बैठीं हतीं, सो जैसई भीतर घुसे कै मूड़ पै डंडा बजन लगे । जे भौत चिल्याने कै हम तुमाये आदमी आंय पै एक तो दिन भर पानी में रये, ठिठुर गये ते, सो मों सें कछू साफ न निकरत तो दूसर अंधेरो हतो । जब वे लस्त पर गये, तब उननें बांधबे खां जोरा उठाबो, तौ डब्बी के उजेरे में एक नें चीन लाओ । अब तो वे रोउन लगीं । जल्दी आगी करी, उनकें हरदी-चूना लगाओ, सेंको । खबर राजा लों पौंची ।

सबेरौ भयो, राजा आज बड़ी फिकर में हते । वे बोले कै चोर तौ बड़ो चतुर है, कैसें पकरो जाय । मंत्रियन सें सलाह भई । फिर बीरा धरो गओ और सेंगै पांच हजार की इनाम धरी गई । बात सहर में फैल गई । कुल बेरा हो गई, तब चार खंगारनन नें बीरा उठाओ ।

मालिन घरै आई, सो ऊनें कुंवर खां सब हाल बताओ । मालिन नें कई कै बेटा तुम न निकरियो बायरें, भौत धौचाल मचो । कुंवर ने कई कें हमें का कनूने, हम तो भीतरईं रात । फिर उननें पूंछी कै काये मालिन, उनके घर को का हाल है, वे कां रात । मालिन बोली—'बेटा, वे चार भइया हैं । जात के खंगार आंय, पै भौतई बहादुर हैं । उनको घर महलन सें कछू बायें चलकें एक गली में है । छोटे भइया के आबै कछू दिन पैलां लड़का भओ तो, सो आज चौक है । बिचारन की बैन भौत दूर है । जब सें ब्याव भओ, कभउं नई आई । अब तो सुनिइत कै ऊको लड़कइ स्यानो हो गओ । पै औसर काज में तक नईं आउत । बेटा, तुमें का कनूनै, तुम न निकरियो बयारें ।

मालिन नें कुंवर खां भोजन कराओ और चली गई। कुंवर नें भेस बदलो और बजार गये, सो झूला-चंगेर को सामान खरीदो और अच्छे साज-बाज के संगै खंगारनन के दोरें पौंचे। नाऊ सें भीतर खबर कराई कै तुमाये भनेंज आये। घर में सब खां बड़ी खुसी भई। चारउ मम्मा दौड़े आये कै बेटा भले आये, बे तो आबे खां रोउत तीं, पै दद्दा जिज्जी खां न लिवा लाउते। कुंवर बोले—'कान लगे कै मम्मा नें कभउं खबर नइं लई। ओसर-काज में तक ठीक सें 'चिठ्ठी तक नईं आउतीं। अब उनइं में से कोउ खां लिवांय ल्याइयो, सो लिवा जैहैं। नइं तो हमाये संगैई चले चलियो।'

वे बोले—'चलनैं तो हतो, पै जो एक काम मुड़या लओ, जानैं कबै ठिकाने लगनैं। अबै तो बने राव कौन जल्दी आय हैं, फिर देखबी।

माईं बोलीं—'बेटा बड़ो खर्चा करो, इतनो लो काये खां ल्याये।' कुंवर बोले—'माईं, भगवान को दओ खूब है, तो घरई खां न करिये।' माईं बोलीं—'बेटा, सो तो तुमाये मम्माहुत नें खूब कमाओ, चलो दिखाइये। जे भरे कोठा।' उन्नें उनें सब दिखाओ।

सबनें ब्यारी करी। फिर कुंवर बोले—'माईं, मम्माहरें कांकी तैयारी आय कर रये।' उननें कई कै बेटा मम्माहुन नें चोर पकरबे के लानें राजा के इतै बीरा उठाओ, सो ओइखां पकरबे जैहैं। कुंवर बोले कै हमउं संगै चलबी। उन्नें कई कै बेटा तुम रात कें कां फिर हो, घरै परो। पै जब कुंवर न माने, तो बे बोलीं कै लिवांय जाय।

चारउ भइया चारउ दिसन खां घेर गये। कुंवर बड़े के संगै बने रये। बे लेंय ते एक चोर पकरत को एक फांसो। ऊ थैलानुमा बनो तो। कुंवर नें पूंछी कै मम्मा जो काय लेंय। बे बोले—'वेटा ई में चोर खां फांस कें बंद करो जा सकत।' कुंवर बोले—'मम्मा हमें बंद करकें बताव।' उननें कुंवर खां बंद कर दओ, फिर निकार लओ। अब कुंवर नें कई कै मम्मा ल्याव हम तुमें बंद करकें देखिये। उननें कई कै लेव कर लेव। कुंवर उनें बंद करकें ऊको तारो लगाओ और उयै उतइ छोड़कें घरै पौंचकें माईं सें बोले—'माईं बड़े मम्मा नें चोर पकर लओ और थैला में बंद कर लओ, पै वे अकेले हैं। छोटे मम्मा हरें कऊं और तरफ निकर गये। बड़े मम्मा सें ऊ अकेलें घिसटत नइइां, ईसें उननें हमें भेजो कै माईंहन खां लिवा ल्याव, तो घसीट कें घरै कर लइये। वे बोलीं कै वेटा तुम घरै देखियो, हम जैयत हैं। जैसई वे मांय खां गइ, कुंवर नें कोठा में सें सब सोनो-चांदी निकारो और मालिन के घरै भग आये।

सबेरो भओ, तो हल्ला हो गओ कै चोर नें खंगारनन को सब खड़िया खाला कर दओ। खबर राजा के इतै पौंची। अब राजा खां और चिंता बढ़ी। फिर सें दस हजार रुपैया इनाम के साथ बीरा धरो गओ। दुपारी हो गई, पै कोऊ नें हिम्मत न करी। संजा की बेरां दीवान साव नें बीरा उठाओ।

मालिन घरै आई। ऊनें कुंवर खां सब हाल बताओ और कान लगी कै बेटा बायरें न निकरियो, भौत घोचाल मचो। कुंवर बोले कै अरे आंहां मलिन, हमें बायरें का करन जानै। फिर मालिक सें पूछन लगे कै काये मालिन दीवान साब के घर में को को है। मालिन ने कइ—'बेटा, सब कोउ है उनकें। दो लड़का हैं, बहुएं हैं। बिटिया है, सो ऊको ब्याव कर दओ तो, पै दमाद कउं बिदेस चलो गओ तो, सो दस बारा बरसें हो गइं, अबै लो लौटो नइयां। इसें वा इतइं रात। बिचारी दुखी है।

मालिन कुंवर खां भोजन कराकें महलन चली गई। कुंवर नें भेस बदलो और बाहर निकरे। जंगल में पौंच कें उननें पांच बैल गाड़ियन में पथरा भरवाये और उनें तिरपाल सें ढंकवा दओ। जब संजा की बेरा भई, तो उननें गाड़ियन खां दीवान साब के घर की तरफ चलाओ और अपुन चले। गैल में गांव को नउआ मिलो। ऊसें बोले कैसे तनक हमाये बार तो बना दे। ऊ बोलो कै बार बनवावे की जा कौंनउ बेरा आय। जल्दीं न होय, तो सबेरें बनवा लइयो। कुंवर बोले—'भइया, दस-बारा बरसन में तो आज परदेस सें लौटे, दीवान साब कें हमाई ससराल है। कुल कमाई हो गई, सो मन भओ कै अब अपने देस खां लौट चलिये। देख नइं रये जे गाड़ीं भरी आ रइं पछाड़ें। ईसें अच्छो नइं लगत, ऐसई पौंच जांय। तुम कोउ सें टका लेत होओ, सो हमसें रुपया लै लइयो।' नउआ भौत खुस भओ। ऊनें जल्दीं-जल्दीं कुंवर के बार बनाये और दौरत-दौरत दीवान साब के घरै खबर दई—'अपने दमाद भइया आये हैं। मैंने तो ब्याव सें आज आय देखो, पै देखतइं चीन लओ। भौत कमाकें लाये, माल सें गाड़ीं भरीं।' मताई नें नउआ खां ई खुसखबरी में इनाम दई और लड़कन खां लैबे के लानें भेजो।

कछू रात हो गइ ती। दीवान साब घोड़ा पै बैठे चक्कर लगा रये ते। गाड़ीं देख के बोले—'जे गाड़ीं कीकीं आंय, ठाड़ीं रान देव।' कुंवर आंमे आये, और बोले—'अपुन गाड़ीं रोकबे बारे कां होत, गाड़ीं दीवान साब के घरै रुकहैं।' इतने में दीवान साब के लड़का आ गये और दीवान साब खां हटक कें बोले—'दद्दा, तुमनें चीनो नइयां। अपने जीजा जू आय। घरई कीं गाड़ीं रोक रये।' दीवान साब भौंचक्के रै गये। तुरतइं घोड़ा सें उतरे, कुंवर

के पांव परे और कान लगे—'बेटा, कुल दिनन में देखो, सो चीन नईं पाओ तो, चलो घरै चलो।'

घरै पौंचे, तो खातिरदारी होन लगी। सास ने आकें पांव परे। कुंवर बोले—'भौजी हरें कां हैं।' तौलों दोई भौजाई आ गईं। उनन पांव परे और कान लगीं—'कुंवर साब खां इतने बरसन में आय खबर आई ई घर की, हम तो जानत ते कउं और घर बसा लओ।' कुंवर बोले—'हंसी न करो भौजी, धंधा-ब्योपार को चक्कर ऐसई होत।'

ऐसइ बातें होत-होत कुल रात हो गई। कुंवर खां अलग पलंग बिछ गओ। अकेलो पाकें बिटिया बरनो सब सिंगार करकें आई। ऊनें पांव परे और धीरे सें बोली—'बिलात दिनन में खबर लइ, का ल्याये हमाये लानें?' कुंवर नें दो अच्छे भांग के लडुआ निकारे और कान लगे—'लेव पैलां तनक कछू खा लेव। जा इतने बरसन की कमाई कोउ और के लानें आय का।' बिटिया नें लडुआ खाये सो तनकई देर में उयै नसा आ गओ। बा बेहोस हो गई। कुंवर नें जल्दी सें ऊको सब जेवर उतारो और पिछवारे सें निकर कें मालिन के घरै घुस गये।

सबेरो भओ। दीवान साब के घरै रोबा गाई मच गई। सब जनें कान लगे कै चोर ओई आय हतो। पै अब का होत तो। खबर राजा लों पौंची। राजा सोचन लगे कै ऐसो चोर तो हमनें कहूं नईं सुनो, जा तो हमाये लानें चुनौती बन गई। वे दरबार में पौंचे। सब मंत्रियन सें बातचीत करी, फिर एक बीरा धर कें बोले—'चोर तो चुनौती बन कें आओ है, ईसें अब जो कोऊ ईखां पकर कें ल्याहे, ऊखां हम आदो राज दै दैबी।' सबेरे सें संजा हो गई। काऊ नें हिम्मत न करी। आखिर राजा नें खुद बीरा उठाओ और घोड़ा पै बैठ कें निकर परे।

मालिन घरै आई, सो अउतईं बोली—बेट गजब हो गओ, चोर दीवान के इतै दमाद बन कें आओ और बिटिया को सब जेवर लै गओ। आज तो खुद महराज नें बीरा उठाओ। तुम सो बायरें न निकरियो।' कुंवर बोले—'हमें मालिन, निकर कें कन्ने का है। मालिन नें कुंवर खां भोजन कराओ और महलन चली गई।

कछू रात बीती। सब के किवारे लग गये। कुंवर नें एक बूड़ी डुकरिया को भेस बनाओ और दोरे के चौंतरा पै बैठकें चकिया सें चना दरन लगीं। इतने में घोड़ा पै बैठे राजा निकरे, तो उननें डुकरिया खां देखकें कई कै डुक्को इतनी बेरां काय करतीं। डुक्को रूपी कुंवर धीरें सें बोले—'बेटा,

अकेली हों। आंख न लगत ती, सो मैंनें सोची कें तनक देउल दर लेंव। अपुन कांय जात अबै? एक जने तो और आये ते।' राजा बोले कै बो कौन तरफ खां गओ। उननें कई कै अबै-अबै एइ गली में घुस गओ। राजा नें घोड़ा बड़ाओ और गली में घुस गये। घंटाक में राजा फिर लौटे और पूछन लगे कै काये डुक्को फिर दिखानो। उननें कई—'बेटा, तुम जैसई गये, बो न्यांय सें आओ और तनक इतै रुक कें फिर ऊ तरफ खां चलो गओ।' राजा नें फिर ओइ तरफ खां अपनो घोड़ा दौड़ा दओ। कछू देर में राजा फिर लौट कें आये और डुकरिया से पूछन लगे कै फिर कें दिखानो। उननें कई कै हमें तो लगत जैसे तुमरों डरात सो होय, अबै-अबै नइखा-घोड़ा पै भगत गओ। राजा फिर एक चक्कर लगा आये। ऐसई-ऐसई जब कुल देर हो गई, तो राजा बोले—'डुक्को, तुम हमें अपने उन्ना पैरा देव, हम दरियत तुमाये चला। सो बो आहे, तो हम पकर लैबी।' उननें कइ कै जैसो अपुन काव। तुरतइं कुंवर नें राजा खां लेंहगा पैराकें फरिया उड़ाई और उनकी पोसाक खुद नें पैरी। राजा चना दरन लगे और कुंवर नें घोड़ा पै बैठकें तुरतहें एड़ लगाइ, सो महलन में पौंचे। राजा के तो कुंवर आयें, फिर राजा की पोसाक पैरें ते, सो दरबान नें जानी कै राजइ आंय। वे भीतर महलन में गये और राजा की सेज पै जाकें पर रये।

डुकरिया के भेस में राजा खां चना दरत-दरत कुल देर हो गई और कोउ न आओ, तो बे सोचन लगे—'होय न होय, चोर ओई आय पै अब महलन कैसें जांय। काये सें कै बे घांघरा-उड़नियां पैरें ते। पै जानें तो हतोई, सो जैसई चार बजे को घंटा बजो वे महलन खां चले। डुकरिया भेस में राजा खां दरबान नें न चीन पाओ, ईसें उन्हें भीतर जावे सें रोको। राजा नें अपनी पैचान दई, पै दरबान बोलो कै हमाये राजा तो तीन बजें लौट आये और भीतर आराम कर रये।

राजा चौंके, फिर उननें दरबान खां सब बातें बताईं। बातचीत सें दरबान नें अपने महाराज खां चीन लओ और तुरतईं उनें भीतर करो। राजा गुस्सा तो हतेई, उननें तुरतइं पोशाक बदली और तलवार लैकें उतइं पौंचे जां कुंवर सो रये ते। जैसई मारबे की सोची, ऊसई रानी नें पाछे सें उनको हांत पकर लओ और कान लगी—'महराज, अपुन सो सब जानतइ

७

हो। भया सोउत आदमी कभउं मारो जात ? उयै जगा कें पैलां सब पूंछ लेव, फिर जो कन्नै आय, सो करियो।'

इतने में कुंवर की आंख खुल गई, उननें राजा के पूंछबे के पैलई अपनी मताई की दई कोई फरिया राजा के सामूं फैला दई, जी में लिखो तो—

'मैं हों राजा भोज भुजइयां छल सें ब्याहें जांव।
मोरी जायो मोइखां छल है तब गौना लें जांव॥

पइतनई राजा आंखें खुल गई। उननें तुरतई कुंवर खां छाती सें लगा लओ।

—घोषयाना मार्ग, छतरपुर

कम पढ़ो सों हर सें गओ

● जितेन्द्रसिंह

अथाई पै पौंच कें सबसे रामा किसनी भई औ हम एक कोद बैठ कें पंचन को बतकाव सुनन लगे। लल्लू कक्का बता रये ते—'आज एक पन्द्रइया हो गई लरका इस्कूल नईं जा रए। मौड़ी मौड़न खां डांट-डपट कें इस्कूल जाबे की बात कई, तौ उननै बताओ कै इस्कूल में मास्टर जू तौ हैं नइयां, फिर का करें उतै जाकें। अब बतावों ई समै काये की छुट्टी है, जौन सब मास्टर छुट्टी मना रए। कछू समजई में नईं आ रओ कै कैसे भरों खातो मचो ?''

'हां भइया हमऊ नें कइयकदार उनके हेडमास्टर खां समजाओ कें सब जनें इखया कैन चले जाओ इतै लरका बरबाद फिरत रात। कजन्त कछू जरूरी काम होय, तौ एक जने चले जाओ औ बाकी के दो जने इतै मोड़ी-मोड़न खां पढ़ाउत राव।' अकेले वे काए खां मानन लगे हमाई बातें, तीन के तीनउ बिला जात। हमनें सिच्छा बिभाग के अधिकारियन लौ सिकाइत की दरख्वास भेजी, पै उननें कछू कार्रवाई नईं करी। जा सब राज-काज को ढीलोपन आय, नईं तौ इत्तो बिलोरा काये खां होतो।' जे सब बातें परभू मांते नें बताईं।

अब हलकांई पांडे नें गाँव के पढ़े-लिखे औ अधपढ़े लरकन की बात उठाई वे बोले कै—'गाँव में कछू जौन पढ़े-लिखे लरका हैं, वे गाँव सें बाहर सहरन में रैबे की बातें सोचत हैं। उनै अब जो गाँव अच्छो नईं लगत आय जितै की की धूरा में खेले-कूदे औ जांके खेत खरहानन के बूते अँगाऊँ बढ़े। ओई गाँव अब अच्छे। नईं लगत। और जे जौन तनक-भौत पढ़ कें गांवन में रए, सो बे सोऊ अपने खां बाबूजी समजन लगे। चार अच्छर पढ़ लओ, सो घर बारन पै रुआब जनाउन लगे। दिन भर नाँय-माँय निठल्ले घूमत रत। जुल्फन में तेल डारो औ फरिया लगाई, बगल में दबा लओ रेडियो और करन लगे

दुनियां की बातें । इनें तो बस अच्छे कपड़ा पैरबे खां चाइये औ खाबे खां साजो साजो चाइये, घर गओ होरी में । इनें कछू मतलब नइयां । ढोरन खां एक बाल्टी पानी नईं दिखा सकता है । हां चोपड़ को फड़ जमा दें, औ मन में आबै, तो पत्ता खेल लेवें जे नोपढ़ा अपने सामू कोउ खां कछू गिनतई नइयां बात ओई है कें 'अधजल गगरी छलकत जाय' 'लरका कम पढ़ो सो हर सें गओ औ जादा पढ़ो सो घर सें गओ' ।''

पांड़े जू की बातें सुनकें रमुआ भैया बोले 'पांड़े जू' बात तो सांची रए, अकेलें आजकाल के जमाने में पढ़बो भौतई जरूरी है । कांन नईं लगत कै मात पिता बैरी भये जिन न पढ़ाये बाल' सो मोड़ी मोड़न खां पढ़ाबो-लिखाबो तो भौतई जरूरी है । अकेले हमाये गांव के इस्कूल की हालत भौत खराब है, लगत है कें 'आज गिरो कें काल' । ईसें निबिया के नैचें बैठ कें तो लरका पढ़त हैं, औ चौंतरा पै मास्टर जू बैठ जात हैं । येई सें चौमासे में पढ़ाई नईं हो पाउत ।''

जा बात सुनकें ग्यासी दाऊ बोल परे—'पढ़ाई का खाक होबै । सबरे मास्टर तो अपने गांवन में परे-परे खेती-बारी देखत । मुफत की तनखवाय लेत रत । जबइं म्वायना के के लानें डिप्टी साब आउत, सो सब हाजिर हो जात औ म्वायना हो जात इस्कूल को । हमनें तो इतै लौ सुनी के जिदना डिप्टी साब खां म्वायना करनें भओ, सो बे पैलऊ, सें मास्टरन लौं खबर पौंचा देत । सब मिलो भगत आय ऊपर सें नैचें लौं । कोउ का कर सकत, जाती बेरा डिप्टी साब खां कछू दान-दच्छना कर दई औ अच्छो स्वागत कर दओ सो फुर्सत भई । फिर का करनें, दुनियां चिल्लात राय ।''

''खैर जे बातें तो होई रईं । दुनियां अपनो अपनो घर भर रई, सो जई काये खां चूकें । अकेले हमें तुमें तो कछू न कछू बिचार कें गैल निकारनेई है, जीसें हमाये मोड़ी-मोड़ा पढ़-लिख जांय । काये सें बिना पढ़े-लिखे हमइं सब भुगत रए, तो हमाए लरका-बच्चा काये खां ई मसक्कत में परें ?'' रमतोले कक्का को जो बिचार हतो ।

रमतोले कक्का की औ दूसरे पंचन की बातें सुनकें परमू माते ने कई—''तो फिर हमाई सलाह तो जा है कें सबसें पैलां दो-चार जनें चलकें सूदे सिच्छा बिभाग के बड़े साहब से मिलें औ सब बातें उनें बता दें । फिर पंचाइत बिभाग के अधिकारियन से मिल कें औ उनसें सलाय लैकें इतै इस्कूल के काजें मकान बनवावे की कोसिस करी जाय, जीसें छांयो में बैठ कें मास्टर

पढ़ा लिखा सकें । नये इस्कूल के बनवावे में सब जनें तन-मन-धन से सहजोग करें । सरकार जौन सहायता दै देय, सो ठीक है, नईं तो सब जनें मिलजुल कें दो कमरा औ एक दुगई बनवावे को इन्तजाम कर लइये । अब बताओ पंचन की का राय है ।''

परमू माते की बात पै सब जनन नें हांमी भरी औ इस्कूल बनवावे को संकल्प लओ । फिर सभा बिसरजित हो गई ।

हमऊ, जोई सोचत चले आए कै 'हो जाय जो काम, तो भौतई अच्छी बात आय । चलो एक बड़ी समस्या को अच्छी समादान अथाई पै हो गओ । अकेले माते की बात पै सब जनें सहजोग करें, तबईं बात बननै । येई के संगें जब सब जनें अपने मोड़ी-मोड़न खां टेम-टेम सें पढ़बे पौंचावें औ बारी-बारी सें इस्कूलै जाकें देखत राबें कै का कैसी चल रई पढ़ाई ? तबईं सिच्छा को उजयारो फैल है औ अपढ़न की गिनती कम हुइयै ।'

कांति-निकेतन
ग्योंड़ी, हमीरपुर (उ० प्र०)

रपट—१

साहित्यकार समीक्षा निशा : आलोच्य कवि श्याम सुन्दर शुक्ल

जिला हिन्दी साहित्य सम्मेलन दमोह के मासिक आयोजन के पांचवे अनुक्रम में गीतकार श्याम सुन्दर शुक्ल की समीक्षा-निशा गत २५ सितम्बर को ए० डी० एम० मु० वि० वर्मा के मुख्य अतिथ्य एवं सुरेश चौधरी की अध्यक्षता में सम्पन्न हुई। डॉ० निरंजन सिंह ने सरस्वती वंदन किया, तदुपरांत आलोच्य गीतकार शुक्ल ने अपनी चुनी हुई पांच रचनायें पढ़ीं।

प्रमुख समीक्षक राजधर जैन 'मानसहंस' ने समीक्षात्मक आलेख पढ़ते हुए कहा—गीतकार शुक्ल लोकचेतना और अनुराग के कवि हैं। उनकी रचनाओं में लघु बिम्ब उपस्थित हैं, वे साफ-सुथरे और दृश्य सौन्दर्य से भरे हैं। कवि ने लोक जीवन में प्रख्यात कथानकों, मिथकों और प्रतीकों की रचनाओं में गतानुगतिक शैली में अपनाया है, फलतः वह जिले में बहुत लोकप्रिय हैं और उसकी रचनाओं की सम्प्रेषणीयता बढ़ी है। उन्होंने कवि से आग्रह किया कि उसने अपनी उत्तरकालीन रचनाओं में जिस समसामयिक परिवेश और जीवन को उकेरा है, उसको और गहराई और बारीकी से चित्रित करें, तब जो रचनायें विनिर्मित होंगी वे कवि की नहीं, हमारी अपनी होंगी।

बहस में हस्तक्षेप करते हुए, डॉ० निरंजन सिंह ने गीतकार शुक्ल की जनोन्मुखता की प्रशंसा करते हुए टिप्पणी की कि रचनाओं में यदाकदा मांसल प्रयोगों से बचा जा सकता था। गफूर तायर का मत था कि वे कवि की समग्र काव्ययात्रा से परिचित हैं और उसके गीतों में जीवन्त परिवेश दिशा-बोध लेकर उपस्थित है। श्री निर्मल जी की टिप्पणी रजनीश शैली में उभरी कि कवि शुक्ल एक सच्चे इन्सान हैं और उनकी दिशा मासंलता से अध्यात्म की ओर है। सुरेशकांत ने कवि के गीतों को सैद्धांतिक दृष्टि से पुष्ट माना और नारायण मिश्र तथा प्रेमचंद 'प्रेमेन्दु' ने गीतों में अध्यात्म के स्पर्श को

सराहा। अपने उत्तर में कवि ने कहा कि वह यथार्थ के नाम पर नग्नता और फूहड़ चित्रण का विरोधी है तथा रचनाओं में भारतीय सांस्कृतिक विरासत के अंकन का हिमायती है और इसी दृष्टि से रचना करता है। अंत में संचालक डॉ० छविनाथ तिवारी ने कवि की रचनात्मक ऊर्जा को प्रभविष्णु बताते हुए अनुरोध किया कि परिवेश और अंचल की प्रतिभाओं का मूल्यांकन और प्रतिष्ठापन रचना की समझ और रचनाधार्मिता के अभिवर्धन की दृष्टि से नितांत जरूरी है। जिला हिन्दी साहित्य सम्मेलन दमोह की यह पहल इसी नजरिया का परिणाम है। मुख्य अतिथि श्री वर्मा और अध्यक्ष श्री चौधरी ने इस उपक्रम के लिए सम्मेलन को बधाई दी और कहा कि अपने बीच के रचनाकारों को समझने के लिए ऐसे आयोजन बहुत आवश्यक है अन्यथा बाहरी सूर्य की तलाश में घर के नीराजन से हम वंचित हो जायेंगे।

—प्रस्तुति : डा० छबिनाथ तिवारी

रपट—२

सामाजिक परिवर्तन और साहित्य का दायित्व

प्रगतिशील लेखक संघ के तत्त्वावधान में एक दिवसीय छतरपुर जिला इकाई का प्रथम जिला सम्मेलन स्थानीय शासकीय शिक्षा महाविद्यालय के सभाकक्ष में सम्पन्न हुआ, जिसमें मुख्य अतिथि के रूप में भाषण करते हुए संघ के प्रांतीय अध्यक्ष डा० कमला प्रसाद पाण्डेय ने कहा कि स्वर्गीय मुंशी प्रेमचन्द के शब्दों में 'साहित्यकार स्वभाव से ही प्रगतिशील होता है। इसलिए प्रगतिशील संघ का परिचय मात्र इतना ही काफी है कि इस संघ से प्रेमचंद 'मुक्तिबोध परसाई आदि जैसे लेखक जुड़े, जिनके विचारों से ही इस संघ का परिचय स्वतः मिल जाता है। इन लेखकों ने समाज की धड़कन को पहिचाना था, पहिचाना है। इसी कारण वे समाज के अति निकट पहुंचे। जब लेखक समाज की दिली धड़कनों को पहिचान कर ही अपनी लेखनी को गति देगा, जन-जन के दिलों में अपनी पैठ करेगा और आम आदमी की पीड़ा, दर्द, टीस आदि में डुबोकर अपनी बात कहे, तभी वह समाज को सही दिशा की ओर ले जा सकेगा। 'पहल' सम्पादक श्री पाण्डेय ने बताया कि हमारे राज्य में प्रगतिशील लेखक संघ को अनेक कठिनाइयों के बावजूद निरंतर सफलता मिल रही है, जो

हमें अत्यधिक प्रेरणा देने वाली है। प्रगतिशील आन्दोलन इतिहास की प्रगतिशील धारा की तलाश का आन्दोलन है। बड़े-बड़े कवि-साहित्यकार जो इस धारा से कटे, प्रसंगहीन हो गए।

प्रो० पाण्डेय जी द्वारा समारोह के उद्घाटन के पूर्व प्रगतिशील लेखक संघ की जिला इकाई के अध्यक्ष श्री रामजीलाल चतुर्वेदी ने उनका स्वागत-अभिनंदन करते हुए परिचय दिया। सम्मेलन के दूसरे चरण में एक विचार-गोष्ठी का आयोजन हुआ, जिसमें सर्व श्री रमेश चौरसिया, ज्ञानचन्द्र साहू, लीलाधार मण्डलोई, शिवनारायण खरे, रामसेवक गुप्त तथा नर्मदा प्रसाद गुप्त आदि विद्वज्जनों ने सामाजिक परिवर्तन में साहित्य की भूमिका विषय पर आलेख तथा वक्तव्य प्रस्तुत किए। श्री चौरसिया ने अपने आलेख में कहा कि विश्व एवं भारत की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में देखा जाये, तो ज्ञात होता है कि समाज में परिवर्तन लाने में साहित्यकार ने महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है। श्री ज्ञानचंद्र साहू का कथन था कि साहित्य सामाजिक पर्यावरण को अत्याधिक प्रभावित करता है, जिससे समाज के निर्माण में साहित्य का पर्याप्त योगदान रहता है। इसीलिए कहा जाता है कि 'साहित्य समाज का दर्पण है। साहित्य शोषित-पीड़ित लोगों की पीड़ा को भी चित्रित करता है। श्री लीलाधर मण्डलोई ने जोर दिया कि सामाजिक परिवर्तन में सहियिक प्रतिबद्धता और निष्ठा आज के सहित्यकारों में नहीं है। आदमी और उसके, आस-पास को बदलना उतना आसान नहीं है, जितना समझा जा रहा है। पूंजीवाद को समूल नष्ट करना होगा। गरीबों को इसके विरोध में जगना होगा और यह काम साहित्यकार ही कर सकता है। साहित्य को प्रकाशक के हाथ बेचकर स्वयं का प्रचार सहित्यकार कराना चाहता है। जनता का भला इसमें क्या लाभ है? लोकरुचि-विश्लेषण वृत्ति जो अब अंतिम छोर पर है, उसे ही हमें आगे बढ़ाना होगा, तभी साहित्यकार समाज में परिवर्तन ला सकता है। श्री शिवनारायण खरे ने समाज को पारिभाषित करते हुए कहा कि समाज से राष्ट्र बनता है और समाज का निर्माण सहित्य पर ही अवलम्बित है। इसलिए साहित्य द्वारा समाज ही नहीं, राष्ट्र भी बदला जा सकता है। श्री रामसेवक गुप्त ने अपने आलेख में बताया कि साहित्य में ही सब का हित निहित है। साहित्य का आशय ही सबका हित है और साहित्य हर प्रकार से सबका हित करता है। इसलिए समाज को सही दिशा में मोड़ने का महत्वपूर्ण दायित्व साहित्य ही निबाहता है। प्रोफेसर नमंदा प्रसाद गुप्त ने अपने वक्तव्य में श्री लीलाधर मण्डलोई की बात से असहमति व्यक्त करते हुए कहा कि यह कहना त्रुटिपूर्ण होगा कि आज के साहित्यकारों में

साहित्यिक प्रतिबद्धता और निष्ठा का अभाव है। साहित्यकार आज भी निष्ठापूर्वक समाज-निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निबाह रहा है। श्री मण्डलोई की बात कुछ गिने-चुने लोगों पर ही लागू हो सकती है। तदुपरांत हुई बहस व चर्चा में सभी उपस्थित विद्वानों ने सक्रिय भाग लिया और विचारगोष्ठी का सफल समापन हुआ। रात्रि में चंद्रनगर के कलाकारों द्वारा प्रेमचंद की कहानियों—'पंच परमेश्वर' और 'नमक का दरोगा' के नाट्य रूपान्तरों का मंचन इस दृष्टि से सफल और प्रशंसनीय रहा कि उसके सभी रंगकर्मी गाँव के थे और गाँव के कलाकारों में अभिनय के प्रति इतनी जागरूकता इस बात का प्रमाण है कि गाँव की धरती से जुड़ी कथा का मंचन ज्यादा सहज रूप में गाँव के कलाकारों से ही हो सकता है। शर्त यह है कि वे नगर के मंच में आकर चकचौंधया न जाएँ।

प्रस्तुति: वीरेन्द्र शर्मा 'कौशिक'

रपट—३

प्रतिबद्धता से युक्त कहानीकार बल्लभ सिद्धार्थ

हिन्दी के जाने माने कथाकार बल्लभ सिद्धार्थ के सम्मान में डा० नर्मदा प्रसाद गुप्त के निवास पर एक गोष्ठी का आकस्मिक आयोजन इसलिए महत्वपूर्ण रहा कि उसमें कहानीकार ने अपनी अनुभूतियों को बड़ी निश्छलता और साफगोई से समाने रखा। छतरपुर के वयोवृद्ध कवि श्री रामनाथ गुप्त हरिदेव की अध्यक्षता में विचारों के इस एकतरफा पैमाइशी खोजबीन में प्रश्नकर्ता थे डा० नर्मदा प्रसाद गुप्त, डा० राधावल्लभ शर्मा एवं वीरेन्द्र शर्मा कौशिक। गुप्त जी के यह पूछने पर कि कथाकार की कहानियों का प्रेरणा स्रोत एवं उद्देश्य क्या है, सिद्धार्थ जी ने तपाक से उत्तर दिया कि वे अपनी कहानियों में जीवन की भोगी अथवा अनुभूत घटनाओं को गूंथते हैं और उनके पीछे विचार तो रहता है किन्तु वह विचार किसी वादी आग्रह या विशिष्ट दर्शन से बंधा हुआ नहीं रहता। बल्कि यों कहा जाय कि उनका कथाकार किसी भी प्रतिबद्धता से सर्वथा मुक्त है, तो उचित ही होगा। इस पर डा० राधावल्लभ शर्मा ने प्रतिबद्ध लेखकों और कथाकारों का जिक्र करते हुए अपनी खीझ जाहिर की कि आजकल लेखक प्रतिवद्ध विचारों के कारण एक गुट सा बनाये हुए हैं और विशुद्ध साहित्य के हक में

यह कतई ठीक नहीं है। इस पर वीरेन्द्र शर्मा कौशिक ने चर्चा को कुछ और आगे बढ़ाते हुए एक मुद्दा उठाया कि मुश्किल तो तब होती है जब कथाकार पूरी कहानी लिखने के बाद भी ऐसा लगता है कि, कुछ कह नहीं रहा है और वह विचार शून्यता कहानी के लिए घातक है। इसी समस्या को स्पष्ट करते हुए बल्लभ जी ने अचानक एक आत्मविश्लेषणपरक टिप्पणी दी कि मैं अपनी कहानियों में विचार तो रखता हूँ लेकिन उन विचारों को पहले से ही निर्धारित कर किसी कटघरे में नहीं बन्द करता।' जहाँ तक शिल्प का संबंध है गुप्त जी की प्रमुख आपत्ति यह थी कि आज के कथाकारों की कहानियों में अंग्रेजी शब्द ठूंसने का एक फैशन सा हो गया है और इसकी शिकार आपकी भी कहानियाँ हैं। कथाकार ने इसे स्पष्ट करते हुए बड़े साफ शब्दों में कहा कि उन्होंने उसे फैशन नहीं बनाया है बल्कि किसी भी पात्र की सहज अनुभूति को अभिव्यक्त करने के लिए उनका उपयोग किया है।

अंत में एक काव्यगोष्ठी के साथ गोष्ठी का सरस समापन हुआ जिसमें नगर के प्रमुख कवियों ने अपनी हिस्सेदारी के द्वारा छतरपुर की आधुनिक काव्य चेतना को प्रतिबिंबित किया।

प्रस्तुति—
अमिताभ गुप्त

बुंदेलखण्ड साहित्य अकादमी के संरक्षक सदस्य

● श्री चन्द्रदीप नारायण बड़ेरिया, लकी बिस्कुट कम्पनी, हाजीगंज पटना, (बिहार)

● श्री दुलीचन्द भाई पालन, पालन सदन, पंचशील कालोनी, चेरीताल, जबलपुर; (म० प्र०)

मामुलिया पत्रिका के आजीवन सदस्य

● **छतरपुर**—सर्वश्री श्रीमती कमलेश अग्रवाल, हरिसिंह घोष, वीरेन्द्र शर्मा 'कौशिक', श्रीमती प्रमोद पाठक, नमंदा प्रसाद गुप्त, चिरंजीव अग्रवाल श्रीमती कान्ति खरे, महेशचन्द्र चौरसिया, घासीराम सेठ, अरुण श्रीवास्तव, सुरेन्द्र शर्मा, श्रीमती ललिता देवी सोनी, मोतीलाल नेहरू विधि महाविद्यालय, बाबू कन्हैया लाल अग्रवाल, बाबूराम चौरसिया एण्ड कम्पनी, विजय बहादुर ताम्रकार, कौशल किशोर, दिनेश कुमार, सुरेन्द्र तिवारी, डा० डी० एच० लाल 'सरल', केदारनाथ रावत, चिरौंजी लाल अग्रवाल, भैयालाल व्यास, भगवान दास घोष, आचार्य स्वामीशंकर मिश्र, चौधरी स्वामी प्रसाद अग्रवाल, संतोष कुमार सर्राफ, श्रीराम सर्राफ, रामनाथ गुप्त हरिदेव, स्वतंत्र प्रभाकर रावत, कुंवर के० पी० सिंह, अशोक चौरसिया, बिहारीलाल खरया, जे० सी० श्रीवास्तव, होम्योपैथी मेडिकल कालेज, डा० सूरज सहाय शर्मा, बालकृष्ण प्रेमनारायण रूसिया, घनश्याम दास राकेश कुमार गुप्त, बाबू जो खरे, श्रीराम मोदी, डा० ए० एन० सिंह, डा० ए० पी० द्विवेदी, प्रो० प्रमोद पाण्डेय ● **कर्री**—श्री आशाराम त्रिपाठी ● **पिपेट**—डा० नाथूराम चौरसिया **महाराजपुर**—प्रो० बद्री प्रसाद गुप्त, प्रो० सुरेन्द्र सिनहा अंजलि **लौंड़ी**—जानकी प्रसाद रामस्वरूप सर्राफ, लच्छीराम अम्बरीष कुमार सर्राफ ● **टीकमगढ़**—श्री वीरेन्द्र शर्मा **पृथ्वीपुर**—श्री रतीभानु तिवारी 'कंज' ● **महोबा**—सर्वश्री डा० वीरेन्द्र निर्झर, बाबूलाल गुप्त, श्रीकृष्ण चौरसिया, अंबिका प्रसाद पाराशर, नवीन चन्द्र शुक्ल, गया प्रसाद त्रिपाठी, डा० सतीश चन्द्र अवस्थी, नरेन्द्र चन्द्र जैन, जवाहर लाल शिवहरे, प्रेमनाथ शर्मा ● **कबरई**—सर्वश्री किशोरी लाल गेड़ा, मोतीलाल अरविन्द कुमार गुप्त, **चिरगांव**—सर्वश्री उर्मिला चरण गुप्त, जुगल किशोर नवलकिशोर, डा० विनोद बिहारी बिस्वारी, हरिराम

बागड़ ● मऊरानीपुर—सर्वश्री वल्लभ सिद्धार्थ, रामदास नगरिया, मोतीलाल बिलैया गोपालदास नगरिया, प्रेमनारायण अग्रवाल अहिरवार उज्जैन—श्री ब्रजलाल मिश्र ● उरई—श्री रामनारायण अग्रवाल दतिया—डा० कृष्णबिहारी लाल पाण्डेय दमोह—श्री वीरेन्द्र कुमार इटोरया ● भोपाल—श्री प्रेमनारायण रूसिया ● जबलपुर सर्वश्री डा० कृष्णकुमार हूँका, डा० राजेन्द्र त्रिवेदी, कैलाश मड़बैया ● अमरपाटन पं० उर्मिला प्रसाद शुक्ल ● सतना—डा० कन्हैया लाल अग्रवाल ● देवेन्द्रनगर—श्री सुरेश 'पराग' ● सागर श्री माधव शुक्ल 'मनोज' ● इन्दौर सर्वश्री सुखपाल सिंह चौहान, मुरारी लाल खरे ● वाराणसी–डा० देवेन्द्र कुमार सिंह ● कलकत्ता श्री रघुनाथ दास अग्रवाल ● अतर्रा—विज्ञान शिक्षा केन्द्र, रमेश सचदेव

टीप—उक्त सूची में उन सदस्यों के नाम अंकित हैं, जो अक्टूबर माह तक सदस्यता ग्रहण कर चुके हैं और जिनकी सूचना इस कार्यालय को प्राप्त हो चुकी है।

- अकादमी की संरक्षक सदस्यता : एक हजार रुपये
- अकादमी की आजीवन सदस्यता : पाँच सौ रुपये
- पत्रिका की आजीवन सदस्यता : एक सौ रुपये

एक हजार एक सदस्य बनाने का संकल्प

केवल एक वर्ष तक की अवधि

आप भी इस पत्रिका यज्ञ में समिधा प्रदान करें

धनादेश या बैंक ड्राफ़्ट (स्टेट बैंक) प्रयुक्त करें

बुंदेलखण्ड साहित्य अकादमी छतरपुर—४७१००१,
म० प्र० पंजी० १०६२५

खिलेंगे फूल उस जगह...

रायपुर शहर के जय-स्तंभ चौक पर बने सादे स्मारक पर पता नहीं आप ने गौर किया है या नहीं? १० दिसम्बर, १८५७ के दिन इसी जगह वीर नारायण सिंह को अंग्रेजों ने तोप के गोले से उड़ा दिया था।

१८५७ के स्वतन्त्रता-संग्राम में नामी-गिरामी योद्धाओं के साथ-साथ दूर-दराज के आदिवासी अंचलों में भी असंख्य लोगों ने कुर्बानियाँ दी थीं।

आदिवासी अंचलों में यह लड़ाई केवल राजनैतिक ही नहीं वरन् आर्थिक सामाजिक मोर्चों पर भी सुलग उठी थी। रायपुर जिले के ग्राम सोनाखान में जन्मे वीर नारायण सिंह के लिए यह लड़ाई वहाँ के सूदखोरों, जमाखोरों और अन्य शोषकों के खिलाफ भी अभियान था। ब्रिटिश साम्राज्यवाद का सही रूप शोषण के इन्हीं चेहरों में बेनकाब होता है।

१५ अगस्त, १९४७ को हमें राजनैतिक आजादी हासिल हुई, परन्तु समता पर आधारित शोषण-विहीन समाज रचने का वीर नारायण सिंह द्वारा शुरू किया गया अभियान अब भी जारी है।

सू० प्र० सं०/४६०१/डी/८२

मामुलिया संरक्षित कोष

अपील

बुंदेलखंड की संस्कृति, साहित्य और कला को प्रकाश में लाने के लिए अकादमी ने 'मामुलिया' पत्रिका और अन्य शोध-ग्रंथों का प्रकाशन प्रारम्भ किया है, जिसके लिए काफी निधि की आवश्यकता है। अकादमी सभी उदार मनन महानुभावों से निवेदन करती है कि, जितना जो सज्जन खुले हृदय से इस कोष के लिए दान रूप में धन-राशि देना चाहें, वे कृपया स्टेट बैंक के ड्राफ्ट या धनादेश से 'बुंदेलखंड साहित्य अकादमी, छतरपुर' के नाम भेजकर अपना उदार सहयोग प्रदान करें। स्टेट बैंक में इसका खाता 'मामुलिया संरक्षित कोष' के नाम से अलग से रहेगा। संस्था आप सब दानदाताओं की कृतज्ञ रहेगी।

निवेदक,

बुंदेलखंड साहित्य अकादमी

छतरपुर—४७१००१

अगला अंक : आल्हखण्ड विशेषांक

•

- आल्हखण्ड की पृष्ठभूमि में चंदेलकालीन ऐतिहासिक-सामाजिक-सांस्कृतिक इतिहास
- आल्हखण्ड और तत्कालीन हिन्दी साहित्य
- हिन्दी का प्रथम कवि आल्हखण्ड का रचयिता जगनिक
- आल्ह : जनश्रुति और इतिहास में
- आल्हखण्ड की कथावस्तु, पात्रयोजना, युद्धवर्णन, भाषा, महाकाव्यत्व और संस्कृति
- आल्हखण्ड की मौखिक और लिखित परम्परा
- लोकगाथाओं की परम्परा और आल्हखण्ड
- आल्हखण्ड में वर्णित स्थान-नामों का भूगोल और इतिहास
- आल्हखण्ड में वर्णित दुर्गों का स्थापत्य
- परमाल रासो, महोबा समय और आल्हखण्ड
- आल्हखण्ड का पाठ-निर्धारण : समस्याएं और समाधान
- आल्हखण्ड की बुंदेली, अवधी, बघेली, कन्नौजी, भोजपुरी, मगधी, बैसवाड़ी वर्णनाएं
- आल्हा का फड़ और गायकी/आल्हखण्ड की स्वरलिपि
- आल्हखण्ड शैलीबद्ध काव्य-परम्परा
- साक्षातकार—अल्हैत से/आल्हखण्ड के खोजी से

विशेषांक का मूल्य : १५.०० रुपए

- अपनी प्रति अग्रिम सुरक्षित कराएं
- विज्ञापनदाता विज्ञापन का स्थान तुरंत प्रारक्षित कराएं

मामुलिया के विशेषांकों की मूल्यवान परम्परा में
एक अनूठा प्रयास

बुंदेलखण्ड की संस्कृति
बुंदेलखण्ड का साहित्य
बुंदेलखण्ड की कला
के लिए समर्पित

अकादमी के अभिनव प्रकाशन

● बुंदेली फागकाव्य : एक मूल्यांकन

सम्पादक : डा० नर्मदाप्रसाद गुप्त, डा० वीरेन्द्र निर्झर
मूल्य : बीस रुपए

बुंदेली फागकाव्य का उद्भव, विकास और उसकी दीर्घ परम्पर की ऐतिहासिक व्याख्या तथा वस्तु और शिल्प का तटस्थ मूल्यांकन

● आल्हखण्ड : शोध और समीक्षा

यंत्रस्थ

हिन्दी के प्रथम कवि जगनिक के बहुचर्चित लोकमहाकाव्य का प्रथम सर्वांगीण समीक्षा-ग्रन्थ आल्हखण्ड की बुन्देली, बघेली, अवधी, कन्नौजी, भोजपुरी, भदावरी, बैसवाड़ी आदि विविध वर्णनाओं सहित।

● बुंदेली के प्राचीन प्रतिनिधि कवि

यंत्रस्थ

बुंदेली के ग्यारह प्राचीन कवियों के काव्य का विद्वान समीक्षकों के द्वारा प्रामाणिक विवेचन। छात्रों और बुद्धिजीवियों के लिए अत्यंत उपयोगी।

बुंदेलखण्ड साहित्य अकादमी
छतरपुर—४७१००१; म० प्र०